

\* श्रीगुहाराज्ञी जयतः \*

स वं पुरां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

स्वातुहितः पुरां विवक्षेन कथम् यः ।  
भासः स्वातुहितः पुरां विवक्षेन कथम् यः ।

श्रीसप्तवर्ष्य यजुर्वल्प अम यज्ञे विक्षेप्य  
श्रीसप्तवर्ष्य यजुर्वल्प अम यज्ञे विक्षेप्य



अहैतुक्यप्रतिहता यात्मासुप्रसीदति ।

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ॥  
भक्ति धर्मोक्षज की अहैतुकी विनश्यन्ति अति मंगलदायक ॥

सर्वधर्मों का व्येष्टिरीति से पालन करते जीव निरन्तर ।  
किन्तु हृषि-कथा-प्रीति न हो धर्मव्यर्थ सभी केवल बंचनकर ।

वर्ष १३ } गौराब्द ४८२, मास—विष्णु ३०, वार—क्षीरोदशायी { संख्या १०-११  
} शनिवार, ३० चैत्र, सम्वत् २०२५, १३ अप्रैल, १९६८ }

## श्रीकार्ण्यपंजिकास्तोत्रम्

( श्रील खण्डगोस्वामि विरचितम् )

श्रीश्रीबृन्दावनेशो जयतः ॥

तथाप्यस्मिन् कदाचिद्वामधीशो नामजलिपनि ।

अवश्यबृन्दनिस्तारिनामाभासो प्रसीदतम् ॥१६॥

हे कृष्ण ! हे श्रीमति राधिके ! यदि कोई पापी व्यक्ति नामाभासके द्वारा भी  
तुम दोनोंके नामोंका कीर्तन करें, तो भी तुम लोग उसका उद्घार कर देते हो । अतएव  
यदि मैंने कदापि तुम दोनोंके नामोंका कीर्तन किया हो तो उस पुण्यके बल पर आप  
दोनों मुझ पर प्रसन्न होवें ॥१६॥

यदक्षम्यं तु युवयोः सकृदभक्तिलब्धादपि ।  
तदागः क्वापि नास्त्येव कृत्वाशां प्रार्थयते ततः ॥१७॥

यदि कोई अपराधी व्यक्ति भी तुम दोनोंके प्रति लेशमात्र भी भक्ति प्रकाश करें, तो उसके सारे अपराध नष्ट हो जाते हैं, अतएव इस दयालुताके भरोसेपर ही मैं तुम लोगोंकी कृपाकी प्रार्थना कर रहा हूँ ॥१७॥

हन्त क्लीबोऽपि जोबोऽयं नीतः कष्टेन धृष्टताम् ।  
मुहुः प्रार्थयते नाथो प्रसादः कोऽप्युदञ्चतु ॥१८॥

हे वृन्दावनेश्वर ! हे वृन्दावनेश्वरि ! मैं साधन-बलसे सर्वथा रहित हूँ। इस संसारमें बारम्बार क्लेश भोग कर अब उन्हें सहनेमें असमर्थ हूँ। अतएव मैं अत्यन्त निर्लंज छोकर आप दोनोंके श्रीचरणकमलोंमें यह प्रार्थना कर रहा हूँ कि आप दोनों मुझपर प्रसन्न होवें ॥१८॥

एव पापो रुदन्तुच्चरादाय रदनेस्तुणाम् ।  
हा नाथो नाथति प्राणी सीदत्यत्र प्रसीदतम् ॥१९॥

मैं अतिशय पापात्मा हूँ। फिर भी मैं 'हा' नाथ ! हा कृष्ण ! हा वृन्दावनेश्वरि' इस प्रकार ऊँचे स्वरसे रोदन कर रहा हूँ। अतएव अत्यन्त कातर मुझ पामरपर आप दोनों प्रसन्न होवें ॥१९॥

हाहारावमसौ कुवेन्दुभिंगो भिक्षते जनः ।  
एतां मे शृणुतं काकुं काकुं शृणुतमीश्वरौ ॥२०॥

हा नाथ ! हा वृन्दावनेश्वर ! हा वृन्दावनेश्वरि ! मैं अत्यन्त दुर्भागा हूँ, हाहाकार करता हुआ मैं आप दोनोंकी कृपा-प्रार्थना कर रहा हूँ। अतएव आप लोग मेरी कातर-युक्त धुद्र प्रार्थनाकी ओर एकबार तो कर्णपात करो ॥२०॥

याचे फुक्त्य फुक्त्य हाहा काकुभिर्याकुलः ।  
प्रसीदतमयोग्येऽपि जनेऽस्मिन् करुणाण्वौ ॥२१॥

हे वृन्दावनेश्वर ! हे वृन्दावनेश्वरि ! तुम दोनों ही करुणाके समुद्र हो। मैं अयोग्य और अघम होकर भी बड़ा व्याकुल होकर रोदन करता हुआ कातर बचनोंसे तुम दोनोंकी कृपा-प्रार्थना कर रहा हूँ। अतएव आप दोनों मुझपर प्रसन्न होवें ॥२१॥

क्रोशत्यात्स्वररास्ये न्यस्यांगुष्ठमसौ जनः ।  
कुरुतं कुरुतं नाथो करुणाकरणिकामपि ॥२२॥

हे नाथ ! श्रीकृष्ण ! हे श्रीमति राधिके ! मैं मुखमें अंगुठा ढालकर अति आत्म-  
स्वरसे रोदन कर रहा हूँ । अतएव तुम दोनों मुझपर लेशमात्र भी करुणा तो  
करो ॥२२॥

वाचेह दोनया याचे साक्षद्मतिमन्दधीः ।  
किरतं करुणास्वान्तौ करुणोमिच्छामपि ॥२३॥

हे दयाद्वचित्त श्रीकृष्ण ! हे दयाद्वृदये श्रीमति राधिके ! मेरी बुद्धि अत्यन्त मन्द  
है । मैं इस वृन्दावनमें कातर होकर रोदन करता हुआ अत्यन्त दीन वचनोंसे तुम दोनों  
के श्रीचरणकमलोंमें यह प्रार्थना कर रहा हूँ कि मुझपर आप लोग करुणातरञ्जकी  
छटाकी वर्षा तो करो ॥२३॥

मधुरा सन्ति यावन्तो भावाः सर्वत्र चेतसः ।  
तेभ्योऽपि मधुरं प्रेम प्रसादो कुरुतं निजम् ॥२४॥

हे नाथ कृष्ण ! हे श्रीमति राधिके ! तुम लोगोंके गोलोकादि नित्य घामोंमें  
सालोक्यादि जो मधुर भाव हैं, उन सभी भावोंकी अपेक्षा तुम दोनोंका प्रेमभाव ही  
सर्वोत्तम और चित्त-प्रीतिकर है । अतएव अपने उसी प्रेमको देकर मुझे भी कृतार्थं  
करो ॥२४॥

सेवामेवाद्य वां देवावीह किञ्चन नापरम् ।  
प्रसादाभिमुखौ हन्त भवन्तौ भवतां मयि ॥२५॥

हे नाथ श्रीकृष्ण ! हे श्रीमति राधिके ! मैं आप दोनोंके निकट और कुछ भी  
प्रार्थना नहीं करता, केवलमात्र तुम्हारी सेवा प्रदान करनेकी प्रार्थना कर रहा हूँ ।  
अतएव मुझपर आप दोनों प्रसन्न होंवें ॥२५॥

नाथितं परमेवेदमनाथजनवत्सलो ।  
स्वं साक्षाददास्यमेवास्मिन् प्रसादोकुरुतं जने ॥२६॥

हे अनाथवत्सल श्रीकृष्ण ! हे अनाथपालिके राधिके ! मैंने यह जान लिया है कि तुम लोगोंका दास्य भाव ही ( जीवोंके लिए ) सर्वोत्तम-प्राप्ति है । अतएव तुम दोनोंके श्रीचरणकमलोंमें यही प्राप्तिना है कि आप दोनों प्रसन्न होकर मुझे अपना दास्य-भाव प्रदान करो ॥२६॥

अङ्गालि मूढ़्नि विनस्य दीनोऽयं भिक्षते जनः ।

अस्य सिद्धिरभीष्टस्य सकृदत्युपपाद्यताम् ॥२७॥

अत्यन्त दीन-हीन मैं अपने मस्तक पर अङ्गालि बैधिकर तुम लोगोंसे यह भीख मांग रहा हूँ कि तुम दोनों दया करके मेरा धर्मीष्ट पूरण करो ॥२७॥

अमलो वा परिमलः कदा परिमिलन् वने ।

अनध्येन प्रसादेन आणं मे धूर्णयिष्यति ? ॥२८॥

आहा ! आप दोनों श्रीवृन्दावनमें निकुञ्जमें कब परस्पर मिलित होंगे, जब तुम दोनोंके श्रीअङ्गोंका गन्ध अत्यधिक आनन्द प्रदान कर मेरी ब्राह्मणन्द्रियको विचलित कर देगा ? ॥२८॥

रङ्गयिष्यति कर्णो मे हंसगुञ्जितगङ्गानम् ।

मञ्जुलं कि नु युवयोर्मञ्जुलसिञ्जितम् ? ॥२९॥

तुम दोनोंकी हंसनिनादनिन्दिनी अत्यन्त मनोहर नूपुरोंकी मधुरध्वनि मेरे कर्ण-युगलको कब परितृप्त करेगी ? ॥२९॥

सीभाग्यांकरथाङ्गादिलक्षितानि पदानि वाम् ।

कदा वृन्दावने पद्यमनुमदिष्यत्ययं जनः ? ॥३०॥

अहा ! इस श्रीवृन्दावनमें सीभाग्यसूचक रथ-चक्रादि चिह्नोंद्वारा चिह्नित तुम दोनोंके श्रीपादपद्मोंका दर्शन कर कब मैं आनन्दित तथा उन्मादित होऊँगा ? ॥३०॥

( क्रमशः )

# श्रीमद्भागवत

## दो प्रकारके भागवत

‘श्रीमद्भागवत’—शब्दसे ‘विष्णु’ और ‘वैष्णव’ दोनोंका ही बोध होता है। श्रीमद्भागवत-ग्रन्थ विष्णुके शास्त्रिक अवतार हैं। इसलिए श्रीमद्भागवत मूर्तिमान शब्द-ब्रह्म या विष्णु ही हैं। श्रीमद्भागवत-ग्रन्थमें श्रीभगवत् सम्बन्धीय ब्रह्म और परमात्माके विषय वर्णित होनेके कारण ब्रह्म और परमात्मा भी भागवत हैं।

भगवानकी उपासना करनेवाले भक्त कहलाते हैं। भक्त अपनेको पृथक् रूपमें ब्राह्मण या योगी आदि कहलाना नहीं चाहता। भक्तोंमें विषुद्ध एवं पारमार्थिक ब्राह्मणता अनुस्युत है। भ्रतः अपनेको पृथक् रूपमें ‘ब्राह्मण’ या ‘योगी’ की संज्ञा धारण करनेवालोंमें अधिकांश रूपमें भगवद्भक्तिका अभाव ही देखा जाता है। विष्णुभक्तिसे रहित ब्राह्मणगण निविशेषवादी या केवलाद्वैतवादी होते हैं। भगवद्भक्तिशून्य योगी भी निविशेष केवलाद्वैतवादी होते हैं। ये दोनों ही स्वयं भगवान हो जाना चाहते हैं—भागवत होना नहीं चाहते। क्योंकि भागवत होनेसे भगवानकी सेवा करनी पड़ेगी। भगवान् षडैश्वर्यशाली हैं। भक्त-भागवत भगवानके सेवक हैं। निविशेषवादी-गण भगवान और भागवत (भक्त) के विशेषत्व को दूर कर दोनोंको एकाकार कर देते हैं। परन्तु यह वास्तव सत्य नहीं है। ग्रन्थ-भागवत—भगवद-

वस्तु है और भक्त-भागवत—श्रीमद्भागवतके पाठक या कृष्णानुशीलनकारी हैं।

## ग्रन्थ-भागवतका परिचय

ग्रन्थ-भागवतमें श्रीकृष्णके स्वरूप और विलासका वर्णन किया गया है, साथ ही यह भी दिखलाया गया है कि संसार की सारी वस्तुओंके साथ कृष्णका सम्बन्ध है और वे सारी वस्तुएँ कृष्णसे सम्बन्धित होकर कृष्णानुशीलन-घर्ममें तत्पर हैं। श्रीमद्भागवत कृष्णकी लीला-कथाओंसे परिपूर्ण है। विष्णुके सर्वोत्तम नित्य विलासमय कृष्णलीला निधिके ये नित्य अपूरन्त भण्डार हैं। ये भजनीय कृष्णके भजनकारी आश्रय-सेवक स्वरूप हैं तथा संसारमें आसक्त कृष्ण विमुख जीवोंकी आसक्ति और विमुखताको दूर करके उनका श्रीकृष्णके साथ सम्बन्ध स्थापित करा देते हैं।

## भक्त-भागवतका परिचय और बद्धदशा

भागवतजन ही श्रीमद्भागवतका भजन कर सकते हैं। मनुष्य-मात्र ही “भागवत” हैं। परन्तु वर्तमान समयमें बद्धजीव भगवानसे विमुख होनेके कारण उनकी भगवत्-सेवाकी प्रवृत्ति मायाद्वारा आच्छादित है। जिस समय भागवतजन भगवान् की सेवा या भागवत-पाठ, भागवतके श्रवण-कीर्तन आदिसे विमुख होते हैं, उस समय वे अपनेको मैं भागवत हूँ—ऐसी उपलब्धि नहीं कर पाते। श्रीमद्भागवतकी सेवा करनेसे वे पुनः अपना और

श्रीमद्भागवतका स्वरूप-उपलब्धि कर सकते हैं। यह प्रश्न हो सकता है कि श्रीमद्भागवतकी सेवा कैसे की जाय ? श्रीमद्भागवतका अद्वापूर्वक अवरण कीतन और मनन कर उनके उपदेशोंको धारण आदिके द्वारा ही श्रीमद्भागवतकी सेवा होती है। इस प्रकार श्रीमद्भागवतकी सेवा करनेसे ही जीव की निजस्व वृत्ति—भक्तिका प्रादुर्भाव होता है। भक्तिके प्रादुर्भावसे अभक्ति अर्थात् भगवत्सेवा-विमुखतारूप बद्धभाव सदाके लिए दूर हो जाता है। बद्धभाव दूर होने पर सुनिर्मल भगवत्प्रेम उदित होकर श्रीमद्भागवतके माध्यमसे भक्त-भागवतको—श्रीमद्भागवतके श्वरण-कीतन और मननकारीको अप्राकृत भगवद्रसका आस्थादन कराता है। आश्रय के बिना विषयकी स्थिति और विषयके बिना आश्रयकी स्थिति अर्थात् भक्तके बिना भगवानकी स्थिति और भगवानके बिना भक्तकी स्थिति असंभव है। विलासके लिये विषय और आश्रयमें भेदकी प्रतीति नित्य रहने पर भी वह अद्वयज्ञान-तत्त्व वस्तु है। उनमें मायिक भेद आदि व्यापार नहीं है। श्रीमद्भागवतमें इसी भगवद्धर्मका सम्यक् रूपसे वर्णन है। शुद्धजीवका यही एकमात्र धर्म है।

### स्व-स्वरूपकी उपलब्धि होनेपर बद्धजीव भागवत होते हैं।

जिस समय बद्धजीवको यह उपलब्धि हो जाती है कि 'मैं भागवत हूँ', उसो दिन उसकी भगवत्सेवा-विमुखता—अनात्मानुभूति दूर हो जायगी। और

उसी समयसे उसकी शुद्ध चित्-प्रवृत्ति निर्मल रूपसे भगवानकी सेवामें तत्पर हो उठेगी। उस समय श्रीमद्भागवतकी अप्राकृत वारणी उसके निर्मल अन्तःकरणमें प्रकटित होकर और भी अधिकतर रूपसे उसे भगवत्सेवामें नियुक्त करती रहेगी। जगतके सर्वश्रेष्ठ मुक्त पुरुष ही श्रीमद्भागवतको परमहंसी-संहिता जान कर सदा-सर्वदा उसका थवण, कीतन और मनन किया करते हैं। इस प्रकार श्रीमद्भागवतके अनुशीलन से भगवद्भक्ति उदित होकर जीव मात्रका कल्पाण करती है।

भगवद्भक्ति ही सुक्तिका एकमात्र उपाय है और भागवत ही भक्ति प्राप्तिके मूल कारण है

यदि कोई इस भव-कारागारसे सदाके लिए मुक्ति पाना चाहता है तो उसे भगवद्भक्तिमें अवस्थित होना आवश्यक है और भगवद्भक्तिमें प्रवस्थित होनेके लिए श्रीमद्भागवतकी सेवा अपरिहार्य है। श्रीमद्भागवत निर्मत्सर परमहंस वैष्णवोंकी प्रिय वस्तु है। काम क्रोध आदि-आदि ग्रनथोंसे मर्वथा मुक्त पुरुषगण एकमात्र श्रीमद्भागवतका ही अनुशीलन करते हैं—

श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद्वैष्णवानां प्रियं  
पर्त्तमन् पारमहंस्यमेकममलं ज्ञान परं गोयते ।  
यत्र ज्ञान-विराग-भक्ति-सहितं नैकम्यं माविष्णुतं  
तच्छृण्वन् सुपठन् विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः॥

( श्रीमद्भा० १२।३।१८ )

जो लोग लौकिक विचारके प्रवाहमें वह कर-

बद्ध विचारोंके जालमें बद्ध होकर श्रीमद्भागवतके साथ दूसरे-दूसरे शाखाओंको समज्ञान करते हैं—एक समान मानते हैं, वे नित्यबद्धभी संज्ञा प्राप्त कर कर्मी, जानी या अन्याभिलाषी हो पड़ते हैं।

जिनकी श्रीमद्भागवतमें रुचि नहीं होती, वे ही कृष्णाविमुख और जड़ीय ज्ञानको कीड़ा-पुतली हैं।

**श्रीमद्भागवत ही वेद-वेदान्त और निगम आदि का विशुद्ध भाष्य एवं सार है**

श्रीमद्भागवत ब्रह्मसूत्रका अक्षरिम—सच्च भाष्य है। यह निगमकल्पतरुका मुपक्ष फत्त है। वेदके मूल—जो परम सत्य-वस्तु श्री भगवान हैं, जब आवृत हो पड़ते हैं, जब उनका चिह्नमात्र भी नहीं दीखता, तब वे ही श्रीमद्भागवतके रूपमें आविभूत होते हैं। श्रीमद्भागवतमें जिस नित्य सत्यका वर्णन है, वह कर्मियों और ज्ञानियोंके द्वारा अनादृत होने पर भी वेदगम्य हरिकथारूप प्रपक्ष फलस्वरूप ग्रन्थ-भागवत वैयासिक-सम्प्रदायके एक-मात्र उपजीवन है—

‘निगमकल्पतरोगंलितं फलं ।’

किसी-किसीके मतानुसार श्रीमद्भागवतके अनेक स्थानोंपर विवर्तवादका विचार हृषिगोचर होता है; परन्तु विवर्तवादियोंकी विवर्त बुद्धिके कारण ही श्रीमद्भागवत जैसे चुद्ध भगवद्भक्ति-मूलक ग्रन्थमें भी विवर्तवाद दिखलायो पड़ता है। वैयासिक सम्प्रदायके लिए विवर्तवादको तनिक भी आवश्यकता नहीं, अधिकन्तु उनके आवश्यक त्याज्य

है—इस प्रकारके समीचीन सिद्धान्त हो सर्वत्र परिलक्षित होते हैं। कलियुग पावनावतारी श्रीचरेतन्य महाप्रभुजी ने इस श्रीमद्भागवतको ही हेयांशवज्जित—अमल निगम बतलाया है—

‘श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं’

**भागवत ग्रन्थ—सर्वजनपूज्य, असीम और वैकुण्ठ वस्तु हैं**

श्रीमद्भागवतका संसारमें विद्वत् समाजमें सर्वाधिक समादर होगा—इस विषयमें तनिक भी संदेह नहीं है। श्रीमद्भागवतके समान संसारकी किसी भी भाषामें, कहीं भी कोई कल्याणकारी ग्रन्थ नहीं है। भविष्यमें यह अमल पुराणराज पृथ्वीतल पर सर्वत्र ही और भी अधिक रूपमें पूज्य और आदरणीय होगे। श्रीमद्भागवत आकाशके चाँद हैं। पृथ्वीपर स्थित जीवरूपी वीने उनको स्पर्श करनेमें सर्वथा असमर्थ होनेपर भी उसके स्त्रिघ्न चन्द्रिकालोकसे सुशीतल हो सकते हैं। जीव अपने पाण्डित-ज्ञान रूप हाथोंको जितना भी न क्यों चाँदकी ओर प्रसारित करें, वे श्रीमद्भागवतको कदापि पकड़ नहीं सकते। क्योंकि श्रीमद्भागवत वैकुण्ठमय हैं।

**श्रीमद्भागवतका आदर सभी क्यों नहीं करते**

इतना होनेपर भी संसारके सभ्य कहे जानेवाले सभी लोग सर्वतोभावेन श्रीमद्भागवतका आदर क्यों नहीं करते ? इसका उत्तर यह है कि जड़बद्ध जीव भगवानकी सेवासे विमुख होकर स्वयं ही भोक्ता या सेव्य बन बैठा है। वह सभी वस्तुओंको

अपना ही भोग्य समझ रहा है। ऐसी दशा में जो व्यक्ति उसके भोगमें बाधा देगा, उसके प्रति द्वेष करने लगता है। श्रीमद्भागवत कहते हैं कि 'भगवान् श्रीकृष्ण ही निखिल विश्वके एकमात्र भोक्ता हैं, निखिल जीव और जड़ उसके भोग्य हैं।' 'भगवान् के अप्राकृत रूप, नाम, गुण और लीलाएँ हैं। वे निराकार, निविशेष या निःशक्तिक नहीं हैं।' इसी-लिए मायाद्वारा आच्छादित भोक्ताभिमानी जीव-समूह श्रीमद्भागवतको अपने भोगोंमें बाधक समझ कर आदर नहीं करते। यहीं तक नहीं, वे श्रीमद्भागवतसे द्वेषवशः उन्हें संसारसे उड़ा देनेकी सर्वदा असफल चेष्टा करते हैं। इनका कहना है कि ब्रह्मा तो निर्गुण (गुणरहित), निराकार, निःशक्तिक निविशेष आदि है, वे कदापि भोक्ता नहीं हो सकते; ऐसे ब्रह्मकी सेवा भी नहीं हो सकती। अतः मनुष्य ही विश्वका भोक्ता है। श्रीमद्भागवत ऐसे विचारों का खण्डन करते हैं।

कुछ लोग 'प्रहूं ब्रह्मास्मि' और 'सर्व खलु इदं ब्रह्म' आदि वेद मन्त्रोंका कदर्थं कर सभी ब्रह्म हैं—ऐसा प्रचार करते हैं। किन्तु श्रीमद्भागवत इनके इस प्रचारके प्रबल बाधक हैं। इसीलिए ये लोग भी श्रीमद्भागवतसे द्वेष करते हैं।

श्रीमद्भागवत नित्य सत्य है। श्रीमद्भागवतके प्रतिपाद्य तत्त्व नित्य सत्य, त्रिसत्य, सत्यकी योनि स्वरूप एवं परम सत्य हैं। श्रीमद्भागवतकी वाणियाँ, उपदेश और सिद्धान्त—सब कुछ चिर सत्य है, परम सत्य है। श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने श्रीमद्भागवतको साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन कहा है।

कुछ लोग ऐसे महामहीम श्रीमद्भागवतको भी व्यवसायका माध्यम बनाते हैं। ये लोग श्रीमद्भागवत पाठ कर अर्थ-संग्रह करते हैं। परन्तु इसके

द्वारा जीवकी नित्यवृत्ति भक्तिका प्रकाश होना तो दूर रहे, विपरीत ही फल होता है। जो लोग श्रीमद्भागवतको कनक, कामिनी और प्रतिष्ठा आदि संग्रह करनेका व्यवसाय बनाते हैं, उन्हें अपने भोग की वस्तु मानते हैं, उनका भक्तिसे या श्रीकृष्णसे लेशमात्र भी सम्बन्ध नहीं है। ऐसे लोग अर्थ, धर्म और काम विवरणमें ही भटकते रहेंगे तथा नामाधाराध करते हुए उत्तरोत्तर अधम योनियोंको प्राप्त होते हैं। जब तक भगवत् सम्बन्ध प्रबल रूपसे हृदयमें न जग जाय, तब तक बद्धजीव कदापि अपनेको भागवत नहीं समझ सकता। ऐसे लोगोंकी संज्ञा 'प्राकृत' है।

### कनिष्ठाधिकारी क्रमोन्नतिद्वारा भागवत होते हैं

उपरोक्त 'प्राकृत' लोग जब भगवानकी अचमिं अप्राकृत विश्वास करके भगवत्पूजा करनेका प्रयास करने लगते हैं, (परन्तु उस समय भी भक्त और अभक्तका भेद समझनेमें असमर्थ रहते हैं) तब उन्हें 'प्राकृत-भक्त' कहते हैं। क्रमोन्नति द्वारा जब वे भगवद्भक्तके साथ मित्रता आरम्भ कर भगवत्प्रेम लाभ करके योग्य जीवोपर दया करते हैं तथा असत् संग—हरि विमुखोंका संग वर्जन करते हैं, उस समय वे 'मध्यमाधिकारो भागवत' कहे जाते हैं। और निरन्तर भजनके प्रभावसे निखिल जीवों को कृष्णका सेवक और निखिल विश्वको भगवान् की सेवाका उपकरण जानकर उनको सर्वत्र ही कृष्णभावकी उद्दीपना होने लगती है, उस समय वे 'महाभागवत' कहलाते हैं। ये महाभागवत ही ग्रन्थ-भागवतके यथार्थ पाठक या अनुशीलनकारी हैं। उनके द्वारा ही श्रीमद्भागवतका गृह तात्पर्य अवगत हुआ जा सकता है।

—जगदगुरु अविष्णुपाद श्रीश्रो सरस्वती ठाकुर

## प्रश्नोत्तर

१—विविधप्रकारके जाग्रोमें कौन-कौनसे प्रधान हैं ?

“उपनिषद्—ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, ल्लाङ्द्राण्य, वृहदारण्यक और श्वेताश्वतर—ये चारहर वेद - जिरोमणिरूप उपनिषद हैं। सूत्र-ब्रह्मसूत्र ( जिसमें चार अच्याय और सोलह पाद हैं ) । ये दोनों ही प्रधान शाखा हैं।”

—अ. प्र. भा. आ. ७। १०८

२—क्या ब्रह्म-प्राप्ति श्रुति-प्रस्थानका प्रतिपाद्य विषय नहीं है ?

“उपनिषद्-समूह, ब्रह्मसूत्र और श्रीमद्भगवद्गीता—ये तीनों ही सभी हृषियोंसे शुद्धभक्तिके प्रतिपादक हैं। विशेष विशेष स्थलोंमें आवश्यकतानुसार इनमें ‘कर्म’, ‘ज्ञान’, ‘मुक्ति’, ‘ब्रह्म-प्राप्ति’, आदि विषयोंकी भी आलोचना की गई है। किन्तु चरम-मीमांसास्थलमें केवल शुद्धभक्तिको छोड़कर और कोई उपदेश नहीं दिया गया है।”

—‘अवतरणिका,’ र. र. भा.

३—क्या अथर्ववेद और वृहदारण्यक उपनिषद् आधुनिक हैं ? जैमिनीके सिद्धान्तका क्या तात्पर्य है ?

“ऋक्, साम और यजुः—ये तीन वेद सर्वमान्य हैं। इनके मन्त्रोंको सर्वत्र मान्यता मिली है। इससे जाना जाता है कि अत्यन्त पुराने सभी मन्त्र

इन तीनों वेदों में संग्रहीत हुए हैं। किन्तु अथर्ववेदको नितान्त आधुनिक कहकर अवहेलना नहीं को जा सकती। क्योंकि वृहदारण्यकमें—‘अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यद्यग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाज्ञिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः इलोकाः सूत्राणान्युव्याख्यानान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निःश्वसितानि—’ऐसी उक्ति है। वृहदारण्यकको भी कदापि आधुनिक नहीं कहा जा सकता। क्योंकि व्यासदेव द्वारा संग्रहित होनेके पूर्व ही उसकी रचना हो चुकी थी। ❀ ❀ ❀ उद्दृत मन्त्रमें जिस पुराण-इतिहासका उल्लेख पाया जाता है, वह वैदिक पुरातन कथा है—जो वेदमें तत्त्वप्रयक्त होनेके कारण ही वर्णित है। मीमांसाकार जैमिनी ने वेदको नित्य प्रमाणित करनेके लिए जो युक्तियाँ दिखलाई हैं, वे कोमल-श्रद्ध व्यक्तियोंके उपकार के लिए कही गयी हैं। सारग्राही महापुरुष लोग सारग्राही जैमिनीका सार-तात्पर्य ग्रहण करें। जैमिनीके सिद्धान्तका यही तात्पर्य है कि जो सत्य विषय आविष्कृत होते हैं, वे परमेश्वर-सम्बन्धी हैं, अतएव नित्य हैं। किंठ, नैचसक, प्रमञ्चद—इन अनित्य वर्णनोंको दिखलाकर जो लोग वेदके सभी मूल सत्योंको अनित्य प्रमाणित करनेका प्रयास करते हैं, वे सत्यकाम नहीं हैं—ऐसा जैमिनीका सिद्धान्त है।”

—‘उपक्रमणिका’ कृ. सं.

४—सम्प्रदायाचार्योंने कौन-कौन-से वेद-ग्रन्थों को स्वीकार किया है ?

"ईश, केन, कठ, प्रेण, मुण्डक, माण्डुक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, आन्दोग्य, वृद्धारण्यक, और श्वेताश्वतर—ये भ्यारह उपनिषद् तथा गोपाल-तापनी और नृसिंह-तापनी आदि उपासनाके सहायक तापनी, ब्राह्मण, मण्डल आदि ऋक्, साम, यजुः और अथर्वके अन्तर्गत कमंकाण्ड विस्तारक वेद-ग्रन्थोंको आचार्योंने स्वीकार किया है। आचार्य परम्पराक्रमसे ये सब वेद-ग्रन्थ प्राप्त होनेके कारण इन्हें सत्प्राप्त प्रमाण आपवाच्य कहा जा सकता है।"

—ज. ध. १३ वाँ अ.

#### ५—न्याय प्रस्थानकी क्या विशेषता है?

"भारतवर्षमें जिन महान् विद्वान् आचार्योंने नक्षत्रकी तरह उद्दित होकर जगतको अपने ज्ञानालोकसे आलोकित किया था, उन सबने ही एकस्वर से ब्रह्मसूत्रकी प्रत्युर प्रशंसा की है। श्रीमच्छकराचार्य, श्रीमद् रामानुजाचार्य आदि ज्ञानी और भक्त-सम्प्रदायके आचार्योंने ब्रह्मसूत्रका अवलम्बन करके अपने-अपने मतोंकी स्थापना की है। जिन सम्प्रदायोंमें ब्रह्मसूत्रके भाष्यको रचना नहीं हुई, वे सम्प्रदाय तनिक भी आचार्योंचित् सम्मान प्राप्त नहीं कर सके। ब्रह्मसूत्रका परिचय यही है कि वेदान्त—उपनिषद् रूपसे नित्य वर्तमन है। उपनिषद्की वाणियाँ सर्वज्ञान-सम्पन्न होनेपर भी हुवोच्य हैं। उनमें एक वाक्यके अर्थके साथ दूसरे वाक्यके अर्थ का क्या सम्बन्ध है, यह सहज ही नहीं समझा जा सकता। इसलिए साधारण पाठकोंके लिए उपनिषदोंका पाठ कर विशेष फल प्राप्त करना कठिन है। सद्गुरुके उपदेशके बिना उपनिषदोंका अर्थ धारण

नहीं किया जा सकता। उपनिषद् ही वेदके शिरोभाग हैं। आत्मज्ञान और जीवोंका कर्तव्य केवल उपनिषदोंमें ही बण्णित हैं। उपनिषदोंके अर्थको जाने विना मनुष्य जन्म सार्थक नहीं हो सकता। भगवान् वादरायण ( वेदव्यासजी ) ने इस विषय की आलोचना करके सारे उपनिषद्-वाक्योंका यथायथ विचारपूर्वक जिन सूत्रोंको प्रकाशित किया है, वे मूत्र-समूह ही 'ब्रह्म-सूत्र' कहलाते हैं। सार्थ, न्याय, पातञ्जल, वशेषिक और पूर्वमीमांसाकी तरह ब्रह्मसूत्र केवल विचार मात्र हो नहीं है। बल्कि वेदके शिरोभाग - उपनिषदोंके यथार्थ तात्पर्य-निरायिक आर्थ-धन्यके रूपमें सभी इसकी पूजा करते हैं। जिन्हें यथार्थ तत्त्वज्ञान प्राप्त करने की इच्छा है, वे दूसरे शाखोंमें अधिक परिश्रम न कर केवल ब्रह्मसूत्रका ही अध्ययन करें। ब्रह्मसूत्रका अर्थ समझ लेना साधारण जीवोंके लिये सहज नहीं है। सूत्रोंका पाठ करनेसे ही अर्थका बोध हो जायगा,—ऐसी बात नहीं है। भाष्योंकी सहायता के बिना सूत्रोंका यथार्थ तात्पर्य जाना नहीं जा सकता। अतएव किसी सद्गुरुके निकट सूत्रोंके अर्थ सीखने पर तत्त्वज्ञान प्राप्त होता है। यहाँ यह एक कठिन प्रश्न है कि सूत्रका कौन-सा यथार्थ भाष्य है? और सूत्रार्थ-निरायिक सद्गुरु भी कहाँ मिल सकते हैं? श्री बोधायन ऋषिने ब्रह्मसूत्र पर जो भाष्य लिखा था, वह प्रायः अप्राप्य हो चुका था। श्रीरामानुजाचार्यजीने सारदापीठसे बहुत ही यत्न-पूर्वक उस भाष्यका संग्रह कर अपने श्रीभाष्यकी रचना की। इसका उल्लेख संस्कृत 'प्रपन्नामृत' ग्रन्थमें मिलता है। श्रीशङ्कराचार्यजीने बहुत यत्न-

पूर्वक यह बोधायन भाष्य अपने मठमें रखा था, इसमें कोई सन्देह नहीं है। श्रीशङ्कराचार्य साक्षात् रुद्रके अवतार थे, अतएव अपनी कार्य-सिद्धिके लिए उन्होंने शारीरिक भाष्यकी रचना की। अपने भाष्यको बहुल प्रचारके लिये उन्होंने बोधायन-भाष्यको छिपाकर रखा था—ऐसी लोकोक्ति प्रचलित है।"

—‘समालोचना’ (वेदान्त-दर्शन) स. तो. दा।

६—ब्रह्मसूत्रका यथार्थ भाष्य कीन-सा है ? शङ्कराचार्य द्वारा बोधायन भाष्य और श्रीमद्भागवतको गुप्त रखे जानेका मूल कारण क्या है ?

‘वेदव्यासजो हो ब्रह्मसूत्रके रचयिता हैं। सभी सूत्रोंकी रचना कर उन्होंने विचार किया—जिस उद्देश्यसे मैंने उपनिषदोंका अर्थ संग्रह करके सूत्रों की रचना की है, वह वास्तवमें पूर्णरूपसे सफल नहीं हुआ। इसके लिये मुझे इन गूढ़ार्थ बोधक सूत्रों पर स्वयं ही भाष्य लिखना उचित है। यदि सूत्रोंके गूढ़ अर्थ में स्वयं प्रकाश न करें तो उनका समाजमें प्रचार होना असम्भव है। ऐसा सोचकर जिस समय वे सूत्रार्थोंप्रकाश करनेकी चेष्टा कर रहे थे, तब श्रीनारदजीके उपदेशसे उन्होंने श्रीमद्भागवतको ब्रह्मसूत्रके भाष्यके रूपमें प्रकाशित किया। इसका उल्लेख वहाँसे पुनरालोमें उपलब्ध होता है। महापुराण श्रीमद्भागवतका ब्रह्म सूत्रके यथार्थ—अकृतिम भाष्यके विद्यमान रहने पर भी बोधायन ऋषिने अपने गुरुदेवकी आज्ञासे एक रीतिके अनुसार ब्रह्मसूत्रका भाष्य प्रणयन किया। इस प्रकार अब ब्रह्मसूत्रके दो भाष्य हो

गए। परन्तु श्रीशङ्कराचार्यजीने भगवदाज्ञाका पालन करनेके लिए मायावादयुक्त भाष्यकी रचना करते हुए उसके प्रचारके लिए पूर्वोक्त दोनों भाष्यों को गुप्त रखनेका प्रयास किया था।”

—‘समालोचना’ (वेदान्त दर्शन) स. तो. दा।

७. ब्रह्मसूत्रके कितने विभाग हैं और उसका सतिपाद्य विषय क्या है ?

‘ब्रह्मसूत्र चार अध्यायोंमें विभक्त है। प्रत्येक प्रध्यायमें चार-चार पाद हैं। \* के के ब्रह्मसूत्रके प्रथम अध्यायमें समस्त वेदका ब्रह्ममें समन्वय है। द्वितीय अध्यायमें सभी शास्त्रोंके साथ विरोधका परिहार किया गया है। तृतीय अध्यायमें ब्रह्मप्राप्ति का साधन बतलाया गया है और चतुर्थ अध्यायमें ब्रह्म-प्राप्तिको ही पुरुषार्थ-शिरोमणि बतलाया है। निष्काम धर्म, निर्मल चित्त, सत्प्रसङ्गके प्रति श्रद्धालु, शम-दमादि सम्पन्न जीव हो इस शास्त्रके अधिकारी हैं, यह शास्त्र स्वयं वाचक है और ब्रह्म इसके वाक्य है। इसलिए शास्त्र और ब्रह्ममें परस्पर वाचक और वाच्यका सम्बन्ध है। इस शास्त्रके प्रतिपाद्य विषय निरवच्छिन्न, विशुद्ध अनन्त गुण-गणयुक्त, अचिन्त्य अनन्त शक्तिसम्पन्न सच्चिदानन्द विग्रह, लोला-पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण हैं। अशेष दोषों के विनाश करते हुए उनका साक्षात्कार करना ही इनका प्रयोजन है। इसमें विषय, संशय, पूर्वपक्ष, सिद्धान्त और सङ्गति—ये पाँच न्याय-अवयव हैं। अधिकरण अर्थात् अध्यायके अंश विशेषका नाम ही ‘न्याय’ है। विचार करने योग्य वाक्यका नाम ‘विषय’ है, एक धर्मित्व में परस्पर-विरोधी नाना

अर्थोंका विचार ही 'संशय' है, प्रतिकूल अर्थोंका नाम 'पूर्वपक्ष' है, और प्रामाणिकके रूपमें प्राप्त अर्थका नाम 'सिद्धान्त' है।"

—‘समालोचना’ ( वेदान्त-दर्शन ) स. तो दा।

८—वेदान्त सूत्रका अवलम्बन कर आचार्योंने कौन कौनसे दार्शनिक मतोंके प्रचार किये हैं ?

"उपनिषद् वाक्योंको 'वेदान्त' कहा जा सकता है। वेदान्तका सम्यक् रूपसे अर्थ करनेके लिए विषय विभागपूर्वक चार अध्याययुक्त 'ब्रह्मसूत्र' नामक जिन सूत्रोंकी श्रीवेदव्यासजीने रचना की थी, उन्हें 'वेदान्त-सूत्र' कहते हैं। विद्वत्समाजमें वेदान्त-सूत्र विशेष आदरणीय है। साधारणरूपमें यह मान्य सिद्धान्त है कि इन वेदान्त सूत्रामें जो कुछ उपदिष्ट हुआ है वही यथार्थ वेदार्थ है। विभिन्न मताचार्योंने वेदान्त-सूत्रोंसे अपना अपना मतपोषक सिद्धान्त निकाले हैं। श्रीशकराचार्यजीने उन सूत्रोंसे 'विवर्तनवाद' का प्रचार किया है। उनका कहना था कि ब्रह्मकी परिणति होने पर ब्रह्मका ब्रह्मत्व नहीं रहता, अतएव परिणामवाद सत्य नहीं है, बल्कि विवर्तनवाद ही सत्य है। इस विवर्तनवादका दूसरा नाम 'मायावाद' है। उन्होंने अपनी आवश्यकतानुसार वेद मन्त्रोंका संग्रह कर विवर्तनवादका पोषण किया है। इससे ऐसा जान पड़ता है कि विवर्तनवाद पूर्वकालसे ही प्रचलित है। श्रीशंकराचार्यने विवर्तनवादकी स्थापना करके परिणामवाद का खण्डन करनेका प्रयास किया। विवर्तनवाद एक मतवादमात्र है। इससे असन्तुष्ट होकर श्रीमध्वाचार्यजीने 'द्वैतवाद'का आविष्कार किया। द्वैतवाद

—स्थापक सारे वेदमन्त्र उनके मतका पोषण करते हैं। इसी प्रकार श्रीमद् रामानुजाचार्यजीने कुछ वेदमन्त्रोंका अवलम्बन कर 'विशिष्टाद्वैतवाद' की स्थापना की। श्रीनिम्बादित्याचार्यजीने बहुतसे श्रुति-मन्त्रोंका अवलम्बन कर 'द्वैताद्वैतवाद'की स्थापना की। श्राविष्णुस्वामीजीने बहुतसे श्रुति-मन्त्रोंका अवलम्बन कर 'शुद्धाद्वैतवाद' का प्रचार किया। श्रीशंकराचार्यके मतानुसार जिस मायावादका प्रचलन हुआ है, वह भक्तितत्त्वके विरुद्ध है। वैष्णवाचार्योंने पृथक्-पृथक् चार मतोंका प्रचार करके भी उनके सिद्धान्तोंको भक्तिमूलक बनाया है। श्रीशंकराचार्यने समस्त श्रुति वचनों का सम्मान और समन्वय करते हुए सारसिद्धान्त की शिक्षा दी है। उसीका नाम अचिन्त्यभेदभेद-तत्त्व है। उन्होंने श्रीमद् मध्वाचार्यजीके सम्प्रदाय भूत होकर भी उनके मतका केवल सार-मात्र स्वीकार किया है।"

—जे. घ १८ वाँ प्र.

९—वेदान्त क्या तिविशेष-ज्ञानशास्त्र है ?

"नहीं, वेदान्त-शास्त्र सभी हृषियोंसे ही भगवद्-भक्ति प्रतिपादक दर्शन-शास्त्र है।"

—त. वि.

१०—वेदान्त भाष्यके क्रमविकास या मधुर रसाश्रित-तत्त्वके आविष्कारका क्या इतिहास है ?

"सङ्क्षिप्तगावतार श्रीरामानुजाचार्यजीने श्रीवोधायन-भाष्यका संग्रह कर श्रीमद्भागवतके अवलम्बन पर अपने श्रीभाष्यका जगतमें प्रचार कर सूत्रोंका यथार्थ अर्थ प्रकाश किया था। उस

श्रीभाष्यमें जो मधुर-रसाश्रित तत्त्व प्रकाशित नहीं था, उसे उत्तम साधु-जिज्ञासुओंको देनेके लिए भगवान् श्रीमद्गोविन्ददेवजीने श्रीबलदेव विद्याभूपण प्रभुको आज्ञा दी । श्रोश्रीचैतन्य महाप्रभुके चरणाश्रित समस्त वेदोंके अध्ययनशील परम निपुण श्रीबलदेव विद्याभूपणजीने जयपुरमें शोगोविन्द भाष्यको प्रकटित किया ।”

—‘समालोचना’ (वेदान्त-दर्शन), स. तो. द१

११—वेष्णवोंके लिए श्रीगोविन्द-भाष्य पढ़ने की क्या आवश्यकता और प्रयोजन है ?

“वहृतसे व्यक्ति मन ही मन अपनेको वेष्णव समझते हैं । किन्तु कौन-कौनसे विषयोंको जाननेसे पौर व्या-व्या करनेसे जीव ‘वेष्णव’ पदवाच्य होते हैं, यह सब जाननेके लिए श्रीगोविन्दभाष्य पढ़ना अत्यन्त आवश्यक है । गोविन्दभाष्य वेष्णवों के लिए अमूल्य-निधि है ।”

—‘समालोचना’ (वेदान्त-दर्शन), स. तो. द१

—जगद्गुरु अंगिरापाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

## सन्दर्भ-सार

### ( श्रीकृष्ण-सन्दर्भ २३ )

यह बात पहले ही कही जा चुकी है कि श्रीकृष्ण ब्रजवासियोंके निकट उत्तरी होकर अपने नित्यधाममें विराजमान हैं । इस बातके अभिप्रायको ब्रह्माजी के बचन स्पष्ट कर देते हैं—

एषां घोषनिवासिनामुत भवान् कि देव रातेति न-  
इचेतो विश्वफलात् फलं त्वदपरं कुत्राप्ययन् मुहृति ।  
सदभेषादिव पूतनायि सकुला त्वामेव देवापिता  
यद्वामार्थसुहृत्प्रियात्मतनयप्राणाशयास्त्वकृते ॥

( भा० १०।१४।३५ )

हे देव ! जिनके गृह, धन, स्वजन, प्रिय आत्मा, जरीर, पुत्र, प्राण और मन-बुद्धि आदि सभी कुछ

प्रापकी सेवाके लिए ही सम्पूर्ण रूपसे समर्पित हैं, ऐसे इन ब्रजवासियोंको आप क्या फल देकर इनके उत्तरण से उत्तरण होंगे ? सम्पूर्ण फलोंके फलस्वरूप प्रापको छोड़कर और कोई परमफल नहीं है—ऐसा सोचकर मेरा चित्त मोहित हो रहा है । आप अपने प्रापको देकर भी इनके उत्तरण से उत्तरण नहीं हो सकते; क्योंकि सदवेष धारण कर आई हुई दुष्टा, बालधातिनी पूतना ने भी अपने बन्धु बान्धवोंके साथ आपको प्राप किया था । इन ब्रजवासियोंको उससे भी उत्तम फल देना उचित है, जो आपके पास नहीं है ।

सत् स्वभावसम्पन्ना धात्रीका वेष पूतनाने

धारण किया था। उसी बेष द्वारा ही उसने श्रीकृष्ण को प्राप्त किया था, यद्यपि उसका स्वभाव बड़ा ही क्रुर था। ब्रजवासी लोग अनादि कालसे ही श्रीकृष्णकी सेवा करते आ रहे हैं। अतएव उन प्रत्येक ब्रजवासीके प्रेमद्वारा वे बैठे हुए हैं। इसलिए कृष्णको ब्रजवासियोंका सनातन मित्र कहना युक्ति-सञ्चात है। ब्रजवासियोंके प्रेममें बैठकर श्रीकृष्ण उनके साथ नित्य निवास कर रहे हैं। इसलिए श्रीब्रह्माजी ब्रजवासियोंके पदरजः की कामना करते हैं।

यदि कोई कहे कि साधारण मनुष्योंकी तरह ब्रजवासियोंमें रागादि गुण देखे जाते हैं; अतएव वे लोग किस प्रकार स्वयं भगवानके नित्य परिकर हो सकते हैं? इसका उत्तर ब्रह्माजीके वचनों द्वारा मिलता है—

तावद् रागादयः स्तेनास्तावत् कारागृहं गृहम् ।  
तावन्मोहोऽद्विनिगडो यावत् कृष्ण न ते जनाः ॥

( भा. १०।१४।३६ )

हे कृष्ण! तभी तक रागद्वेष आदि हुगुण चोरोंके समान मनुष्यका सर्वस्व हरण करते रहते हैं, तभी तक गृह और पुत्र-परिजनादि स्वजन कारागार स्वरूप हैं, तभी तक मोहरूपी बेड़ी पद-शृङ्खलकी तरह है, जब तक जीव अपने आपको आपके श्रीवरणकमलोंमें आत्मसमर्पण न कर दें। कामक्रोधादि मनुष्यके बल स्वरूप धैर्यादि सब कुछ हरण कर लेते हैं। जो व्यक्ति सब प्रकारसे अपने आपको श्रीकृष्णके चरणोंमें आत्मसमर्पण कर देते हैं, उनके रागद्वेष आदि श्रीकृष्ण-विषयक बन जाते

हैं। उनके राग-द्वेषादि अप्राकृत हो जानेके कारण वे चोरोंकी तरह मनुष्यके धैर्यादिका हरण नहीं करते बल्कि वे परमानन्द-स्वरूप हो जाते हैं। यह प्रह्लादजीके वचनों द्वारा स्पष्ट जाना जाता है—

या प्रीतिरविवेकीनां विषयेष्वन ायिनी ।

त्यामनुभवतः सा मे हृदयान्नापसर्पतु ॥

अविवेकी व्यक्तियोंकी जड़ विषयोंमें जो अत्यन्त गाढ़ प्रीति है, मेरे हृदयमें आपके लिए वैसी ही प्रीति सदैव बनी रहें, जिससे मैं अनुकरण आप ही का स्मरण करता रहूँ।

जिन व्यक्तियोंने श्रीकृष्णके चरणोंमें आत्म-समर्पण कर दिया है, यदि वे ऐसा कह सकते हैं, तो श्रीकृष्ण जिनके परम प्रिय मित्र हैं, ऐसे ब्रज-वासियोंके सम्बन्धमें और क्या कहें? नन्दादि ब्रज-वासियोंके सम्बन्धमें कहा गया है—

इति नन्दादयो गोपाः कृष्णरामकथां मुदा ।

कुर्वतो यदाह भगवानन्वभावि तथैव तत् ॥

( भा. १०।११।५८ )

ब्रह्मजीवोंका जन्म स्वान 'भव' या प्रपञ्च कहलाता है। ऐसे प्रपञ्चमें नन्दादि गोपगण प्रकटित हुए थे। किन्तु वे लोग परमानन्दके साथ श्रीकृष्ण-बलरामके चरित्रोंका आस्वादन करते थे और उनकी लीलाओंमें तन्मय होकर संसारके सुख-दुःखों से सर्वदा ही दूर रहते थे।

यदि गोकुल प्रापञ्चिक विषय सुखादियोंके अनुभवसे रहित और श्रीकृष्णसुख द्वारा परिपूर्ण है, तो वह हम जैसे व्यक्तियोंके निकट प्रपञ्चकी तरह

वयों दीख पड़ता है ? ब्रह्माजीका वचन ही इस प्रश्न का उत्तर है—

**प्रपञ्च निष्प्रपञ्चोऽपि विडम्बयासि भूतले ।**

**प्रपञ्च-जनतामन्द-सन्दोहं प्रथितुंप्रभो ॥**

( भा. १०।१४।३७ )

हे प्रभो ! आप प्रपञ्चातीत होकर भी प्रपञ्चकी तरह लीला कर रहे हैं। आप अपने शरणागत भक्तजनों को असीम आनन्द प्रदान करनेके लिए इस भूतलमें प्रकटित हुए हैं। भगवान् कृष्णकी लीलाएँ सर्वथेषु नर-लीलाएँ होनेपर भी प्रापञ्चिक नहीं हैं, वे अप्राकृत लीलाएँ हैं ।

प्रपञ्चातीत गोकुल प्रपञ्चकी तरह लीला-विस्तार वयों कर रहा है ?—शरणागत भक्तोंकी आनन्द-राशिको बढ़ानेके लिए ही। श्रीकृष्णकी ऐश्वर्य लीलाकी अपेक्षा नरलीलामें ही उनके परिकरोंको परमानन्द प्राप्त होता है। इसलिए अपने अप्राकृत धाम गोकुलको मनुष्यलोकके स्थानविशेषकी तरह प्रकाश कर नररूपधारी श्रीकृष्ण अपने परिकरोंके साथ नाना प्रकारकी लीलाएँ करते रहते हैं। ब्रह्माजीके इन सब वचनोंद्वारा यह स्पष्ट जान पड़ता है कि श्रीकृष्ण अपने गोपादि द्वजपरिकरोंके साथ नित्य बिहार करते हैं। अतएव ब्रह्माजीका 'यदो भाग्यं' इलोक द्वारा श्रीकृष्णको नन्दादि द्वजवासियों का सनातन मित्र कहना सर्वथा सुसङ्गत है। श्रीशुकदेव गोस्वामीने नन्द गोपादियोंका नित्य पापदंत्व जानकर कहा है—

**तासामविरतं कृष्णे कुर्वतोनां सुतेक्षणम् ।**

**त पुनः कल्पते राजन् संसारोऽज्ञान सम्भवः ॥**

( भा. १०।१६।४० )

हे राजन् ! श्रीकृष्णमें जिनकी नित्य निरन्तर पुत्रहृष्टि है, ऐसी गोपियोंके लिए या गीओंके लिए अज्ञानके कारण कल्पित संसार-चक्र कदापि संभव नहीं है ।

जो गोपियाँ श्रीकृष्णके प्रति पुत्रहृष्टिसम्पन्ना हैं, जन्म जन्मान्तरमें भी उनके लिए संसार-चक्र संभव नहीं है । वे चिरकाल ही अप्राकृत जगतमें अवस्थित हैं। अर्थात् उन्होंने प्रकटलीलामें परिकर्त्व प्राप्त किया है। प्रकटलीलाके अप्रकट होनेपर उन्हें और संसारी होकर जन्मग्रहण नहीं करना पड़ेगा। वे उस समय भी प्रपञ्चातीत धाममें ही अवस्थित रहेंगे। अज्ञानके द्वारा कल्पित-संसार बद्धजीवोंके लिए ही है, मृत्यु पार्षदोंके लिए नहीं। श्रीगोकुलवासिनी ख्यामें अज्ञानका स्पर्शलेश भी संभव नहीं है। वे गोपियाँ अज्ञानतमः विनाशकारी ज्ञानसूर्यसे भी अत्यन्त श्रेष्ठ वात्सल्य स्नेहसे युक्त एवं प्रेमसम्पन्ना थीं। सर्वदा नित्य अनादिकालसे ही श्रीकृष्णके प्रति पुत्र-स्नेह सम्पन्ना गोपियोंके लिए अज्ञान द्वारा उत्पन्न संसार कदापि संभवपर नहीं है ।

—त्रिदण्डस्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रीती महाराज

# श्रीमद्भागवतमें माधुर्यभाव

( वर्ष १३, सं ८, पृष्ठ १७२ से आगे )

अनेक दिन निवास कर नन्द और गोपगण भी श्रीकृष्ण बलरामसे विदा होकर हृतमना, गतप्राण से मधुरापुरीसे नन्दद्रजको लौट आये । किन्तु व्रज भूमि अब उन्हें सूनी और अशोभनीय दीख पड़ी । मानों सभी प्रकारके राग-रंगसे रहित हो गई हो—ऐसा अनुभव होने लगा ।

गोपियाँ उन गोपोंके बीच अपने प्राणधन, व्रजसर्वस्व, लोचनाभिराम राम-श्यामको बहुत हूँढ़ने पर भी देख नहीं पायीं । उन्होंने यह बात अवश्य मुनो थी कि राम श्याम कुछ दिनोंके बीतने पर यहाँ आयेंगे । उन्हें यह भी जात हो गया था कि कृष्णने कंसको मार दिया है और अब वे अपने माता-पिता वसुदेव देवकीके साथ निवास कर रहे हैं । यदुवंशियोंके वे राजा हो गये हैं । गोपियाँ मन ही मन सोचने लगीं—‘अब वे हम जैसो गाँवकी गँवार ग्वालिनियोंका स्मरण क्यों करेंगे ? शायद अब उन्हें हमसे मिलनेमें भी लज्जा या संकोचका बोध होता होगा । परन्तु हम तो विवश हैं; उनसे हम प्रेम करना नहीं छोड़ सकतीं ।’

दिन बीतने लगे । व्रजाञ्जनाएँ व्रजेन्द्रनन्दनके विरहमें सारे संसारसे विरक्त होकर उद्धोग-प्रलाप-उन्मादकी अवस्थासे रहने लगीं । जो वस्तुएँ उन्हें प्राणधन गोविन्दके संयोगमें सुखद, हृदयहारी प्रतीत होती थीं, वे अब परम दुःखद प्रतीत होने लगीं । रुदन करते-करते और एकटक होकर मार्ग जोहते

जोहते आँखें पथरा गईं । आँखोंके आँसू भी सूख गये । हिमहत कमलकी तरह उनके कमनीय मुख मण्डल मुरझाकर पीले पड़ गये । सुन्दर-सुन्दर धुँधराली काली-काली ग्लके धूसर वर्णके हो गये । उनकी लटियाँ बैंध गईं । गौरदेह कालिमाका शायद बन गया, भोजन-पान, राग-रंग-किसी भी वस्तुमें उनको रुचि नहीं रहीं; नींद विदा हो गई, एकमात्र वारीने अवश्य मुखरता धारण कर ली । वे उठते-बैठते चलते-फिरते हुए ‘हे श्यामसुन्दर ! हे व्रज-सर्वस्व ! हे माखन चोर ! हे रासरसिक ! हे प्राणधन !’—ऐसी रट लगाती रही । विरहकी तीव्र तापसे समय समय पर मूच्छित होने लगीं । उन्हें पपीहा, चन्द्रमा, मेव-सभी खटकने लगे । मुष्प काटों की तरह क्लेशदायी, शोतल-मन्द पवन तोर समान और रात्रियाँ काल सम अनुभव होने लगीं । अपने समान ही वे सभी को विरहसे आपूरित देखने लगीं । कालिन्दी को विरहसे श्याम-वर्ण, वृक्षलताओंको दुःखित तथा पशु-पक्षियोंको अश्रु पूरित लोचनोंसे युक्त देखा । इस प्रकार उनकी विरह वेदना निरन्तर बढ़ती रही ।

उधर श्यामने कंसको मारकर सुहृत जनोंका और सज्जनोंका दुःख हरण किया । माता-पिता वसुदेव-देवकीको कारागारसे मुक्त कर उग्रसेनको मधुपुरीका राजा बनाया । अपनी जननी जनककी आज्ञा लेकर अवन्तिकापुरीमें निवाय कर समग्र

शास्त्रोंकी शिक्षा प्राप्त की । अन्यान्य कार्योंका साधन किया । यज्ञोपवीत-संस्कारसे संस्कृत हुए । इस प्रकार अनेकों कार्यमें व्यस्त रहने पर भी उन्हें ब्रजभूमि, वेनु, ब्रज गोप-मण्डली और ब्रजाञ्जनाओं का निरन्तर स्मरण होता रहा ।

एक दिन वे तीव्र-विरह वेदनासे अत्यन्त व्याकुल हो गये । उन्होंने वृष्णियोंके प्रधान, वृहस्पतिके शिष्य, परम बुद्धिमान, अपने प्रिय सखा एवं मन्त्री उद्धवको अपने समीप बुलाकर गोप-गोपियोंको सान्तवना देने, माता-पिताको आभार भेजनेके लिये तथा ब्रजवासियोंका दुःख दूर करनेके लिए प्रेमभरे शब्दोंमें एकान्तमें ले जाकर ये बातें कहीं—

गच्छोद्धव वज्रं सौम्य पित्रोर्नो प्रीतिमावह ।  
गोपीनां मद्वियोगाधि मत्सन्देशैविमोचय ॥  
ता मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः ।  
मामेव दयितं प्रेषुमात्मानं मनसा गताः ॥  
ये त्यक्तलोकधर्माइच मदर्थं तान् विभर्यहम् ।  
मयि ताः प्रेयमां प्रेष्ठे दूरस्थे गोकुलखियः ।  
स्मरन्त्यो विमुहर्घन्ति विरहौऽकष्ण्यविह्वलाः ॥  
धारयाःत्याकुच्छेरण प्रायः प्राणान् कथञ्चन ।  
प्रत्यागमनसन्देशैर्बंलव्यो मे मदात्मिका ॥

(भा, १०।४६।३-६)

हे सौम्य स्वभाव उद्धव ! तुम ब्रजमें जाकर मेरे माता-पिता यशोदा मैया और नन्द बाबाको आनन्दित करो । गोपियाँ मेरे विरहकी व्याधिसे अत्यन्त पीड़ित हो रही हैं, उन्हें मेरा सन्देश सुनाकर उनकी तीव्र वेदनाको दूर करो ।

प्यारे उद्धव ! गोपियोंका मन नित्य निरन्तर मुझमें ही समर्पित है । उनका जीवन, उनके प्राण,

उनका सर्वस्व—मैं ही हूँ । मेरे लिए उन्होंने अपने पति-पुत्र आदि सगे-सम्बन्धियोंको परित्याग कर दिया है । वे लोग हृदयसे भी मुझे ही अपना प्यारा, तथा अपना प्रियतम आत्मस्वरूप मान रखी हैं । मेरा चिरकालसे यही व्रत है कि जो लोग मेरे लिए समस्त लौकिक धर्मोंको ढोड़ देते हैं, उनका भरण-पोषण मैं स्वयं करता हूँ ।

प्रिय उद्धव ! मैं उन गोपियोंका परम प्रियतम हूँ । मेरे यहाँ चले जानेसे वे मुझे दूरस्थ मानती हैं । मेरा निरन्तर स्मरण कर अत्यन्त विह्वल हो रहीं हैं तथा बारम्बार मूर्छित हो रहीं हैं । वे मेरे लिए प्रतिक्षण उत्कंणित हैं और मेरे विरहकी व्यथासे व्याकुल हो रहीं हैं ।

ये गोपियाँ मेरी स्वरूप शक्तिके प्रकाश हैं । इस समय बड़े ही कष्टसे और यत्नसे अपने प्राणों को किसी प्रकार धारण की हुई हैं । मैंने उनसे कहा था, “मैं शीघ्र ही आऊँगा ।” इसी आश्वासन के बलपर वे जीवित हैं ।

उद्धवजीने अपने स्वामीका सन्देश सुना । वे रथ पर सवार होकर नन्दगाँविको चल दिए । सूर्यास्त होते-होते वे वहाँ पहुँच गये । उस समय गौएं बनसे लौट रही थीं । उनके साथके बछड़े उछल-कूद रहे थे । आस पास गौ-दोहनकी मधुर ध्वनि अत्यन्त शोभाप्रद हो रही थी । गोप-गोपी लोग श्रीकृष्णके मधुर चरित्रोंका गुरुण-गान कर रहे थे । गृहोंमें दीपक जगमगा रहे थे । धूपके गन्धसे सारी दिशाएँ सुगन्धित हो रहीं थीं ।

उद्धवजीने ब्रज पहुँचकर सबसे पहले नन्दभवन में प्रवेश कर नन्दबाबासे मिले । नन्दबाबा उद्धवको

देखकर बड़े ही प्रसन्न हुए। उन्होंने उद्धवजीका पूर्ण श्रद्धा और भावनाके साथ सेवा-सत्कार किया। उसके बाद कृष्ण-बलरामकी सारी बातें पूछीं। व्रज की सारी बातें एक-एक कर बताने लगे और राम-कृष्णकी लीला चरित्रोंका बरण करते-करते विह्वल हो गये—

इति संस्मृत्य संस्मृत्य नन्दः कृष्णानुरक्तधीः ।  
अत्युत्कण्ठोऽवत्तूष्णीं प्रेमप्रसरविह्वलः ॥  
यशोदा वर्णमातानि पुत्रस्य चरितानि च ।  
शृङ्खल्यशृङ्खल्यवस्त्राक्षीत् स्नेहस्तुतपयोधरा ॥  
तयोरित्थं भगवति कृष्णे नन्दयशोदयोः ।  
बीक्ष्यानुरागं परमं नदिमाहोद्धवो मुदा ॥

( भा. १०।४६।२७-२८ )

नन्दबाबाका हृदय स्वभावतः भगवान श्रीकृष्ण के अनुरागके द्वारा रंगा हुआ था। कृष्णकी लीलाओं का एक-एक कर स्मरण करते-करते प्रेमके कारण उनका गला रुध गया और वे बोलने असमर्थ होकर नुपचाप बैठे रह गये।

यशोदाजी भी वहीं बैठकर नन्दबाबाकी बातों को सुन रही थीं। श्रीकृष्णकी एक-एक लीला सुन कर उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी धाराएँ बहती थीं और पुत्रस्नेहकी बाढ़से उनके स्तनोंसे दूधकी धाराएँ बह रही थीं।

नन्द-यशोदाजीका श्रीकृष्णके प्रति ऐसा परमानुराग दर्शन कर उद्धवजी भाव मग्न हो गये और उनसे बातें करने लगे। उद्धवजी भगवान श्रीकृष्ण की ईश्वरता, सर्वव्यापकता आदि बतलाते हुए विमल ज्ञानकी शिक्षा देने लगे। किन्तु उन बातोंको

वहाँ कौन सुने ? व्रजबासी लोग कृष्णसे विशुद्ध प्रेम रखते थे। उद्धवजीका नन्दबाबासे बातें करते-करते सारी रात बीत गई।

एवं निशा सा ब्रूवतोव्यतीता

नन्दस्य कृष्णानुचरस्य राजन् ।

गोप्यः समुत्थाय निरुप्य दीपान् ।

वास्तुन् समभ्यच्यं दधीन्यमन्यन् ॥

ता दीपदीप्तं मणिभिरिजू

रञ्जुविकर्षं दभुजकं कणलजः ।

चलन्नितम्बस्तनहारकुण्डल

तिवष्टकपोलारुणकुं कुमानना ॥

उदगायतीनामरविन्दलोचनं

व्रजाङ्गनानां दिवमः पृशाद् ध्वनिः ।

दण्डश्च निर्मनशब्दमिश्रितो

निरस्यते येन दिशामभङ्गलम् ॥

( भा. १०।४६।४४-४६ )

कुछ रात शेष रहने पर गोपियाँ उठीं; दीपक जलाकर घरकी देहलियोंमें वास्तुदेवकी पूजा की। अपने घरोंको भाड़ बुहारकर साफ किया और फिर दही मथने लगीं।

उनकी कलईयोंमें कड़न शोभायमान हो रहे थे। रससी खींचते हुए वे बहुत भली मालूम हो रही थीं। उनके नितम्ब, स्तन और गलेके हार हिल रहे थे। कानोंके कुण्डल हिल हिलकर उनके कुकुंम मणिडत कपोलोंकी लालिमा बढ़ा रहे थे। उनके आभूषणोंकी मणियाँ दीपककी ज्योतिसे और भी जगमगा रही थीं।

उस समय वे कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णके मङ्गलमय चरित्रोंका गान कर रही थीं। उनका यह सङ्कीर्त दही मथनेकी ध्वनिसे मिलकर और भी अद्भुत हो गया और स्वर्गलोकको भी भेदने लगा। ऐसी स्वरलहरी सब और फैलकर दिशाओं का अमङ्गल मिटा रही थी।

धीरे-धीरे भुवनभास्करका उदय हुआ। उस समय गोपियाँ अपने-अपने घरोंसे निकल रही थीं; उन लोगोंने देखा कि नन्दबाबाके दरवाजे पर एक स्वर्गांमण्डित रथ खड़ा है।

सभी गोपियाँ बातें करती हुईं वहाँ पहुँचीं।  
जाननेकी इच्छासे नन्दबाबाके दरवाजेके पास एक-  
त्रित हो गईं। वे कहने लगीं—

अकर आगतः कि वा कंसस्यार्थसाधकः ।

येन तीतो मध्यपरी कष्टणः कमललोचनः ॥

( भा. १०।४६।४८ )

‘क्या फिरसे अपना प्रयोजन सिद्ध करनेके लिए कंसका दूत अश्व र आ गया है, जो हमारे प्राणप्यारे कृष्णको मथरा ले गया था ?’

गोपियाँ इस प्रकार आपसमें बातें कर रही थीं कि उसी समय नित्यकर्मसे निवृत्त होकर वहाँ उद्धवजी आ पहुँचे। गोपियोंने श्रीकृष्णके समान ही आकृति, तथा वेश भूषायुक्त, घुटनों तक लम्बी भुजाओंसे युक्त, पीताम्बरधारी, कानोंमें प्रकाशमान कुण्डल पहने, काठमें कमल माला धारण किए हुए श्रीकृष्णके सखा उद्धवजीको देखा। वे मुस्कुरातो हुईं कहने लगीं, 'यह पूरण देखनेमें बड़ा ही सुन्दर

है। परन्तु यह है कौन? कहाँ से आया हुआ है? किसका दूत है? इसने श्रीकृष्ण-जैसी वेष-भूषा क्यों धारण कर रखी है?' इस प्रकार सब गोपियाँ उनका परिचय प्राप्त करनेके लिए उत्सुक होकर पवित्रकीर्ति भगवान श्रीकृष्णके आश्रित और उनके प्रिय सखा उद्धवजीको चारों ओरसे धेर कर खड़ी हो गईं—

शचिस्मिताः कोऽयमपीच्यदर्शनः

कृतश्च कस्याच्युतवेषभूषणः ।

इति एम सर्वाः परिवद्ध रुत्सुका-

स्तमुत्तमश्लोकपदाम्बुजाश्रयम् ॥

( भा. १०।४७।२ )

जब उन्हें यह विदित हो गया कि ये तो रमानाथ श्रीकृष्णका संदेश ले आये हैं, तब उन्होंने विनयसे भुक्कर, सलज्ज हास्य, चितवन और मधुर वाणी आदिसे उद्घवजीका अत्यन्त सत्कार किया और एकान्त आसन पर बैठाकर पृच्छने लगीं—

जानीमह्यां यदृपतेः पाषंदं समुपागतम् ।

भर्त्रै ह प्रेषितः पित्रो भंवान् प्रियचिकीर्षया ॥

अन्यथा गोद्वजे तद्य स्मरणीयं न चक्षमहे ।

स्नेहानुबन्धो बन्धुनां मुनेरपि सदृस्त्यजः ॥

अन्येष्वर्थकृता मैत्रो यावदर्थविडम्बनम् ।

पुम्भः स्त्रीषु कृता यद्बत् सुमनस्त्वं षट्पदेः ॥

( भा. १२।४७।४-६ )

उद्धव तो ! हम जानती हैं कि आप यदुनाथ श्रीकृष्णके पार्षद हैं। उन्हींका संदेश लेकर आप

यहाँ पधारे हैं । आपके स्वामीने अपने माता-पिता को सुख देने आपको यहाँ भेजा है । अन्यथा हमें इस नन्दव्रजमें—गीद्धोंके रहने योग्य स्थानमें उनके स्मरण करने योग्य कोई भी वस्तु दिखाई नहीं पड़ती; माता-पिता आदि सगे सम्बन्धियोंका स्नेह बन्धन तो बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी बड़ी कठिनाई से छोड़ पाते हैं ।

दूसरोंके साथ जो प्रेम-सम्बन्धका स्वर्ग किया जाता है, वह तो किसी न किसी स्वार्थके लिए ही होता है । भौंरोंका पुष्पोंसे और पुरुषोंका स्त्रियोंसे ऐसा ही स्वार्थका प्रेम-सम्बन्ध होता है ।

ऐसा कहकर गोपियाँ और भी कहने लगीं—

जब वेश्या समझती है कि अब मेरे यहाँ आने वालेके पास धन नहीं है, तो वह उसे छोड़ देती है । प्रजा अपने रक्षणा में असमर्थ राजाका परित्याग कर देती है । अध्ययन समाप्त होने पर शिष्य गुरुओंको छोड़कर चले जाते हैं । यज्ञकी दक्षिणा मिल जाने पर ऋत्विज यजमानको छोड़कर चलते बनते हैं । पक्षी जब वृक्षको फलहीन देखते हैं, वे वहाँ से उड़ जाते हैं । भोजन कर लेनेके पश्चात् अतिथि गृहस्थकी ओर कब देखते हैं? बनमें आग लगते ही पशु भाग खड़े होते हैं । जार पुरुष अपनी कामिनीका भोग कर चले जाते हैं । इस प्रकार अपने आपको भूलकर और भी कहने लगीं—

इति गोप्यो हि गोविन्दे गतवाक्कायमानसाः ।  
कृष्णदूते ब्रजं याते उद्धवे त्यक्तलौकिकाः ॥  
गायन्त्र्य प्रियकर्माणि इदत्यश्च गतहृष्यः ।

तस्य संस्मृत्य संस्मृत्य यानि यानि कैशोरबाल्ययोः ॥  
काचिन्मधुकरं दृष्ट्वा ध्यायन्ती कृष्णसंगमम् ।  
प्रियप्रस्थापितं दूतं कल्पयित्वेदमद्वीत ॥

( भा. १०।४७।१०-११ )

गोपियोंके मन, वाणी और शरीर श्रीकृष्णमें ही तल्लीन थे जब उद्धव भगवान् श्रीकृष्णके दूत बन ब्रजमें आये, तो वे उनसे इस प्रकार कहते-कहते यह भूल गईं कि कौन-सी बात किस तरह किसके सामने कहनी चाहिए । भगवान् श्रीकृष्णने बचपनसे लेकर किशोर अवस्था तक जो लीलाएँ की थीं, उन्हें याद करते हुए गोपियाँ उनका गान करने लगीं । आत्म-विस्मृत होकर ऊँ सुलभ लज्जाको भी भूलकर फूट-फूट कर रोने लगीं । एक गोपीने ( श्रीमती गाधिकाजी ) उस समय भगवान् श्रीकृष्ण के मिलनका ध्यान करती हुई पास ही में एक भौंरे को गुनगुनाते हुए देखा । रुठे हुए अपनेको मनानेके लिए प्रेरित कृष्णदूत समझकर इस प्रकार कहने लगीं—

मधुप कितवबन्धो मा स्पृशाऽन्नि सपत्न्याः  
कुचविलुलितमालाकुंकुमशमश्चभिनः ।  
वहतु मधुपतिस्तन्मानिनीतां प्रसादं  
यदुसदसि विडम्ब्यं यस्य दूतस्त्वमोहक् ॥  
सकृदधरसुधां स्वां मोहिनीं पाययित्वा  
सुमनस इव सद्यस्त्यजेऽस्मान् भवाहक् ।  
परिचरति कथं तत्पादपद्मं तु पद्मा  
ह्यपि बत हृतचेता उत्तमश्लोकजल्पः ॥

( भा. १०।४७।१२-१३ )

हे मधुप ! कपटी के सखा ! तू भी कपटी है । तुम हमारे पेरों को मत छूओ । भूठे प्रणाम करके हमसे अनुनय विनय मत कर । श्रीकृष्णकी वनमाला हमारी सप्तलियोंके वक्षस्थलके स्पर्शसे मसलो गई है; उसीका पीला-पीला कुंकुम तेरे मूँछोंपर भी लगा हुआ है । तू स्वयं भी तो किसी पुष्पसे प्रेम नहीं करता, यहाँ से बहाँ उड़ा करता है । जैसे तेरे स्वामी, वंसा ही तू भी है । मथुरा की मानिनी नायिकाओंको श्रीकृष्ण मनाया करें । उनका वह कुंकुमरूप कृपा प्रसाद, जो यदुवंशियोंकी सभामें उपहास करने योग्य है, अपने ही पास रखें । उसे तेरे द्वारा यहाँ क्यों भेज रहे हैं ?

तू भी काला, वे भी काले । तू जैसे पुष्पोंका रस लेकर उड़ जाता है, वैसे ही उन्होंने हमें केवल एकबार अपनी मोहिनी और मादक अधर सुधा पिलायी थी और फिर हम भोली-भाली गोपियोंको छोड़कर यहाँ से चले गये । पता नहीं; सुकुमारी लक्ष्मी उनके चरणकमलोंकी कैसी सेवा करती रहती हैं । अबद्य ही कृष्णने अपनी कपटतामरी मीठे-मीठे शब्दोंसे उनका भी चित्त चुरा लिया होगा ।

किमिह वहु षडङ्ग्रे गायसि त्वं यदूना-  
मधिष्ठिमगृहाणमग्रतो नः पुराणम् ।  
विजयसखसखीनां गीयतां तत्प्रसंगः  
क्षपितकुचरुजहते कल्पवन्तीष्टमिष्टाः ॥  
दिवि भुवि च रसायाँ काः स्त्रियस्तदुरापाः  
कपटरुचिरहासभूविजृम्भस्य याः स्युः ।  
चरणारज उपारते यस्य मूतिबंयं का

अपि च कृपणपक्षे ह्युत्तमश्लोकशब्दः ॥

( भा. १०।४७।१४,१५ )

हे भ्रमर ! तू क्यों हम वनवासिनियोंके निकट उस यदुवंश शिरोमणि कृष्णकी पुरानी कथाओंका बहुत प्रकारसे गान कर रहा है ? तू यहाँ से जाकर कृष्णकी मधुपुर-वासिनी नई प्रेयसियोंके निकट जाकर गुणगान कर । इस समय वे उनकी प्यारी हैं, उनके हृदयकी पीड़ा उन्होंने मिटा दी है । वे कामिनियाँ तेरी इच्छाओंको पूर्ण करेंगी ।

( हे कृष्णप्रेयसीशिरोमणे ! तुम ऐसा मत कहो । तुम्हें स्मरण कर श्रीकृष्ण कामसे पीड़ित हो रहे हैं; तुम्हारी प्रीतिको बढ़ानेके लिए मुझे भेजा है—भ्रमरकी ध्वनिसे ऐसा समझकर वह गोपी कहने लगी ) स्वर्ग, पाताल और पृथ्वीमें ऐसी एक भी रुग्नी नहीं है, जो उनके लिए दुर्लभ हो । उनके कपटयुक्त मोहिनी हास्य और भौंहोंके इशारेसे मुरघ होकर स्वयं लक्ष्मीजी भी उनकी चरणधूलिकी उपासना करती हैं । फिर हम श्रीकृष्णके लिए किस गिनतीमें हैं ? कृपण व्यक्ति ही अच्छे-अच्छे उत्तम शब्दों द्वारा उनका कीर्तन कर सकते हैं; मुझ जैसी गोपियाँ ऐसा नहीं कर सकतीं ।

इसके पश्चात् जब भ्रमरने उस गोपीका पादस्पर्श किया, तो गोपीने समझा कि यह क्षमा प्रार्थना कर रहा है; ऐसा समझकर कहने लगी—

विसृज शिरसि पादं वेदम्यहं चाटुकारै-  
रनुनयविदुषतेऽभ्येत्य दौत्यसुं कुन्दात् ।  
स्वकृत इह विसृष्टापत्यपन्थन्यलोका  
व्यसृजदकृतचेताः कि नु सन्धेयस्मिन् ॥

मृगयुरिव कपीन्द्रं विद्यवे हुव्यधर्मा  
 खियमकृत विरूपां खोजितः कामयानम् ।  
 बलिमपि बलिमत्वावेष्टयद् घ्वाक्षबद्य-  
 तदलमसितसख्यदु स्त्यजस्तत्कथार्थः ॥  
 यदनुचरितलीलाकर्णपीयूषविप्तुट्-  
 सकृददनविधूतद्वन्द्वधर्मा विनष्टाः ।  
 सपदि गृहकुदुम्ब दीनमुत्सृज्य दीना  
 बहव इव विहंगा भिक्षुचर्या चरन्ति ॥  
 ( भा. १०।४७।१६-१८ )

हे भ्रमर ! तू अपने मस्तक द्वारा स्पर्श किए हुए मेरे चरणों छोड़ ( तथापि परित्याग न करनेके कारण कहने लगी ) श्रीकृष्णके निकट शिक्षा प्राप्त कर दूतोचित प्रियवाक्य द्वारा अनुनय विनय करने में चतुर हो; तेरी सब बातें मैं जान गई हूँ । हम गोपियोंने उन कृष्णके लिए ही पति, पुत्र, परलोक आदि सब कुछ परित्याग कर दिया था; ऐसी अवस्थामें उस असंयतचित्त पुरुषने हमें परित्याग कर दिया है । ऐसे अकृतज्ञ व्यक्तिके साथ हम क्या सन्धि करेंगी ? जिन नृशंस-प्रकृति कृष्णने रामावतारमें व्याधकी तरह वानरराज बालिका व्याधकी

तरह बध किया था, एवं खोके वशीभूत होकर काम पीड़ा द्वारा पीड़िता समागता सूर्पनखाके नाक-कान काट लिए थे, वामन अवतारमें बलिराज द्वारा प्रदत्त पूजा और उपहार ग्रहण करके उसे बाँधकर त्रैलोक्यसे निराकर पाताल भेज दिया, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कौआ बलि खाकर भी बलि देने वालेको अपने अन्य साथियोंके साथ घेर लेता है और उपरेशान करता है । ऐसे कृष्णसे हमें दन्धुत्वकी कोई आवश्यकता नहीं है । किन्तु उनके कथारूप अर्थ त्याग करना हमारे लिए अत्यन्त कठिन है ।

हंसके समान सारासार विवेकी व्यक्ति जिनका चरित्र तथा लीलाकथामृतकी कणिकामात्र करणे द्वारा आस्वादन कर रागादि द्वन्द्रहित और भोग-निवृत्त होकर दुःखपूर्ण गृह परिजनादिका परित्याग कर प्राण धारण करनेके लिए भिक्षावृत्तिका अवलम्बन करते हैं, ऐसी कृष्णकथा हम छोड़ नहीं पा रही है ।

( क्रमशः )

वागरोदी श्रीकृष्णचन्द्रजी शास्त्री एम. ए.  
 साहित्यरत्न

# श्रीचैतन्य-शिक्षामृत

## पंचम वृष्टि-तृतीयधारा

( वर्ष १२, संख्या ६, पृष्ठ १६० से आगे )

पौत्रलिङ्गण पांच प्रकारके होते हैं—

(१) जो लोग वस्तुज्ञानके अभावमें जड़पदार्थों को ईश्वर मान कर पूजते हैं। (क)

(२) जो लोग जड़को हेय मान कर जड़के विपरीत भावको ईश्वर मानकर पूजते हैं। (ख)

(३) जो लोग ईश्वरका स्वरूप ( श्रीविग्रह ) नहीं मानते; परन्तु स्वरूप-रहित निराकारवा

चिन्तन या ध्यान संभव नहीं है, ऐसा सोचकर निराकारकी उपासनाको सुलभ और सहज करनेके लिए ईश्वरके जड़ीयरूप की कल्पना करते हैं। (ग)

(४) जो लोग अन्तःकरणकी शुद्धि और उन्नति के लिए ईश्वर की कल्पना करके उस कल्पित मूर्ति का ही ध्यान करते हैं (घ)

(५) जो लोग जीवको ही ईश्वर मानकर पूजते हैं। (च)

(क) यस्यात्मबुद्धिः कुण्डे त्रिधातुके स्वधीः कलवादिषु भौम इज्यधीः ।  
यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचिज्जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥  
( भा० १६।८४।१३ )

(ख) तस्यारविन्दनयनस्य पदारविन्दकिङ्गलक्मिथतुलसीमकरन्दवायुः ।  
अन्तर्गतः स्वविवरेण चकार तेषां संक्षोभमभरजुयामपि चित्ततन्वोः ॥

[ भा० ३।१५।४३ ]

(ग) प्रादुरुचकर्य यदिदं पुरुहृतरूपं तेनेश निवृत्तिमवापुरलं हयो नः ।  
तस्मा इदं भगवते नम इद्विधेम येऽनात्मनां दुरुदयो भगवान् प्रतीतः ॥

[ भा० ३।१५।५० ]

[ घ ] कामैस्तैस्तैहैं तज्जानाः प्रपञ्चन्तेऽन्यदेवताः ।  
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥  
अन्तवत्त फलं तेषां तद्वदत्यल्पमेषसाम ।  
देवान् देवयजो यान्ति मदभक्ता यान्ति मामपि ।

[ गी० ७।२०-२१ ]

(च) जीवे विष्णु मानि एई अपराध चिह्न । जीवे विष्णुबुद्धि करे जेई ब्रह्म सम ।  
तारायरण माने तारे पाषण्डे गणन ॥ [ श्रीचैतन्तचरितामृत मध्य २५।७६-७७ ]

### (क) ईश्वर ज्ञानसे जड़की पूजा पौत्रिकता है—

असम्य जंगली जातियाँ, अग्निपूजक और श्रीक देशीय 'जोभ सेठार्न' नामक लोग प्रथम श्रेणीके पौत्रिक हैं। जिन लोगोंमें स्वाभाविकरूपमें ईश्वर विश्वास तो रहता है, परन्तु ईश्वरके स्वरूपका ज्ञान उनमें उदित नहीं हुआ होता, वे लोग अज्ञान-वशतः चमकदमकवाली वस्तुओंको ही ईश्वर मान कर पूजते हैं। अधिकारके अनुसार ऐसी पौत्रिकता निन्दनीय नहीं है।

### (ख) निविशेषवादी पौत्रिक हैं—

इस संसारमें नाम, रूप, गुणवाली सभी वस्तुएँ नाशवान हैं—ऐसा जानकर युक्ति द्वारा इन सारे जड़ीय गुणोंके विपरीत—नाम, रूप, गुण और क्रिया-रहित एक निविशेष भावको ही जो लोग ईश्वर मानते हैं, वे लोग पौत्रिक हैं। ईश्वरको निराकार माननेवाले सभी लोग इसी श्रेणोके पौत्रिक हैं। वास्तवमें निविशेष भाव कदापि ईश्वरका स्वरूप या स्वरूप सम्बन्धीय भाव नहीं हो सकता। ईश्वरके अनन्त विशेषोंमेंसे निविशेषता भी एक विशेष ही है। ऐसी निविशेषता ईश्वरका स्वरूप सम्बन्धीय भाव हो सकता है। ईश्वरका स्वरूप जड़से विलक्षण तो है, परन्तु जड़-विपरीत नहीं है।

### (ग) पंचोपासना भी पौत्रिकता ही है—

जो लोग अन्तमें निर्वाण प्राप्तिको लक्ष्यमें रख कर निविशेष ब्रह्मको प्राप्तिको लक्ष्यकर विष्णु, शिव, प्रकृति, गणेश और सूर्य इन पांचों सगुण मूर्तियोंका

साधनका उपाय मानकर चित्त-शुद्धिके लिये इनकी पूजा करते हैं, किन्तु इन्हें ईश्वरका नित्य-स्वरूप नहीं मानते, वे लोग भी पौत्रिक श्रेणीके अन्तर्गत परिणामित होने हैं। इनके विचारसे ईश्वरका कोई भी रूप नहीं, वे निराकार हैं। परन्तु साधारण साधकोंके लिये निराकार वस्तुकी उपासना सम्भव नहीं है, इनकी अभी तक चित्त-शुद्धि नहीं हुई होती। साधकोंके लिये सर्वप्रथम चित्त-शुद्धिकी आवश्यकता होती है। इसलिये इन साधकोंके कल्याणके लिये निराकार ईश्वरकी उपर्युक्त पांच मूर्तियाँ कल्पित हुई हैं। चित्त-शुद्धि हो जानेपर इन मूर्तियोंकी आवश्यकता नहीं होती। ये लोग पंचोपासक कहलाते हैं। ऐसे पंचोपासक लोग भी इसी श्रेणीके पौत्रिक हैं। किसी गुणको पहिले अवलम्बन कर उसके विपरीत जो गुणशून्यता है, वह कैसे पाई जा सकती है—यह विचार समझसे बाहर है।

### (घ) कल्पित मूर्ति ध्यान भी पौत्रिकता है—

योगी लोग भी विष्णुको निराकार मानते हैं एवं कल्पित विष्णु-मूर्तिका ध्यान करते हैं। इसके द्वारा कुछ दूसरा लाभ हो सकता है; परन्तु इसके द्वारा भगवानके नित्य स्वरूपका साक्षात्कार कदापि सम्भव नहीं है।

### (च) जीवोंको ईश्वर मानना भी पौत्रिकता है—

जो लोग जीवको ईश्वर मानकर पूजा करते हैं वे लोग पांचवीं श्रेणीके पौत्रिक हैं। श्रीश्री-चतुर्थ महाप्रभुको शिक्षाके अनुसार इससे बढ़कर

और कोई भयंकर अपराध नहीं है। जो जीव पूजनीय हैं, उनकी भगवद्भक्त मानकर पूजा करनेसे यह अपराध नहीं लगता। जीव कदापि भगवान् नहीं है और न कभी भगवान् हो सकता है। श्रीराम, श्रीनृसिंहदेव आदिका भजन-पूजन पौतलिक व्यापार नहीं है। इसे मेरे द्वारा रचित “श्रीकृष्णसंहिता” नामक ग्रन्थको पाठ करके समझा जा सकता है।

उक्त पाँचों प्रकारके पौतलिक केवलमात्र भगवत्स्वरूपोंकी ही निन्दा नहीं करते, अधिकन्तु वे परस्पर एक दूसरेकी निन्दा भी करते हैं। पहिलो श्रेणीके पौतलिक जड़ीय-आकाशके सर्वव्यापकत्व गुणको ही ईश्वरका प्रधान गुण मानते हैं तथा भगवत्-स्वरूपोंकी अवहेलना करते हैं। साथ ही वे कल्पित और परिमित समस्त देव-मूर्तियोंकी भी निन्दा किया करते हैं। इसका मूल तात्पर्य यह है कि ऐसे कल्पित-वादियोंमें परस्पर कलह होना अनिवार्य है। पौतलिकमात्र ही पौतलिकोंकी निन्दा करते हैं। इसके विपरीत अपौतलिक, स्वरूपकी उपलब्धि प्राप्त हुआ कोई भी भगवत्-भक्त किसी भी पौतलिक की न तो निन्दा ही करता है और न तो उसके प्रति किसी प्रकारका विवेष ही करता है। वह ऐसा मानता है कि जब तक स्वरूपका बोध नहीं होता, तब तक कल्पनाके अतिरिक्त कोई क्या कर सकता है? कल्पना करते-करते सत्संगके

प्रभावसे साधक जीव कल्पनाको छोड़कर स्वरूप ज्ञानकी ओर क्रमशः बढ़ता हुआ अन्तमें उसे उपलब्धि कर लेता है। तब उसका किसीके साथ विवाद नहीं रह जाता।

### जीव-स्वरूपके विरोधी मतममूङ्द

जीवके स्वस्वरूपके सम्बन्धमें जितने प्रकारके विरोध हैं उन सबका परिचय करना चाहिये। जीव स्वरूपतः एवं बस्तुतः चित्त पदार्थ है; परन्तु प्रकृति निमित जड़ शरीरोंमें बद्ध होनेपर श्रीपाठिक धर्मोंसे लिप्त होकर अपनेको शुद्ध जीवके बदले कुछ दूसरा ही मानने लगता है॥ १ । मातृ-गर्भमें जीवकी उत्पत्ति होती है, क्रमशः इस मनुष्य जीवनमें धर्मकी आलोचना करनेसे परमेश्वर उसके प्रति प्रसन्न होकर एक सर्वथा निर्दोष स्वरूप प्रदान करेंगे—ऐसा विचार जीवोंके लिये स्वस्वरूप विरोधी है। इसाई, मुसलमान एवं ब्राह्मणसमाज आदि शुद्ध शुद्ध धर्म सम्प्रदायोंके ऐसे ही विचार हैं; त्रह्य ही अविद्या ग्रस्त होने पर जीव बन गया है, मैं त्रह्य हूँ—इस प्रकार अनुशीलन करते-करते जब अविद्या दूर हो जावेगी, तब जीव का जीवत्व नष्ट हो जावेगा तथा वह स्वयं त्रह्य ही हो जावेगा। यह पैनथिष्ट (Pantheist), थियोसफिष्ट (Theosophist) और हमारे देश के अभेद ब्रह्मवादियोंका मत है। वास्तवमें स्पष्ट रूपमें ही ये जीव स्वरूपके विरोधी विचार हैं।

\* यन्मायामोहितधियः पुरुषः पुरुषर्यम् । अयो बदन्त्यनेकान्तं यथा कर्म यथा रुचिः ॥

धर्ममेके यथाइचान्ये कामं सत्यं दमं धर्मम् । अन्ये बदन्ति स्वार्थं वे ऐश्वर्यं त्यागभोजनम् ॥

केचिद्यज्ञं तपोदानं व्रतानि नियमान् यमान् । आद्यन्तवन्त एवैषां लोकाः कर्मविनिर्मिताः ॥

दुःखोदंकास्तमो निष्ठाः शुद्धा मृदा शुचापिताः ॥ [ श्रीमद्भगवत् ]

कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि जड़ीय परमाणुओंके मिलनेसे अपने-आप जीव उत्पन्न होता है तथा मृत्यु के उपरान्त उसका नाश हो जाता है। कुछ लोगों का कहना है कि वारीरके नष्ट होनेपर भी उसके द्वारा की हुई क्रियाओंमें उसकी शक्ति वर्तमान रहती है और वही शक्ति दूसरे-दूसरे जीवोंकी उन्नतिमें सहायक होती है। चार्वाक्, कमटी, मिल और सोसलिष्ट आदि नास्तिकोंके विचार इसी श्रेणीके जीव स्वरूप विरोधी विचार हैं। जीव अनेक जन्मों से कर्म करता हुआ क्लेशोंको भोग रहा है। प्रेम, मैत्री और वैराग्यका अवलम्बन कर क्रमशः स्वभाव के शुद्ध होनेपर पहिले शुद्धत्व और अन्तमें निर्वाण की प्राप्ति होती है। यह बौद्ध और जैनियोंका मत है। संयोगवश जीव इस संसारमें उत्पन्न होकर महाक्लेशमें पतित हो गया है, संसारका कोई भी सुख स्वीकार न करके किसी प्रकारसे जीवन धारण करके मृत्यु होनेपर ही शान्ति प्राप्त होगी—यह स्कूपेनहो वर (Scoopenhower) आदि Pessimist (निराशावादी) लोगोंका मत है। प्रकृति और पुरुषके संयोग द्वारा जीवत्व उत्पन्न होता है।

जीवत्वका नाश करना ही परम पुरुषार्थ है। कर्मके लिए हो या विवेकके लिए हो, प्रकृति और पुरुषका भोग्य-भोक्तृत्व भाव अनादि है; उसका नाश करने पर त्रिविध दुःखोंका अत्यन्त निवृत्तिरूप पुरुषार्थ प्राप्त होता है। यह सांख्य मत है। इसमें जीवका अत्यन्त स्वरूप विरोधी भाव है। जीव कृत कर्म द्वारा उत्पन्न अपूर्व ही जीवका कर्मफलदाता है। जीवका मोक्ष या ईश्वरकी ईश्वरता इस मतानुसार नहीं है। यह जैमिनीकृत पूर्व-मीमांसा दर्शनका मत है। जीवका नैष्कर्म्य और अपरिज्ञात अवस्था रूप कैवल्य पहले क्रिया-योग द्वारा विस्तार प्राप्त करता है और उदयकालमें वैराग्ययोग द्वारा प्राप्त होता है। यह पातञ्जल मत है। यह मत जीवका स्वरूप विरोधी मत है—ऐसा पहले ही कहा जा सकता है। ऐतम द्वारा रचित न्याय-शास्त्र और कणाद द्वारा रचित वैशेषिक शास्त्र—इन दोनोंमें परमाणु आदिकी तरह जीव और ईश्वरकी नित्यता स्वीकार की गई है। उसमें जीवका चित्तत्व स्वीकार नहीं किया गया है। जीवको अर्णु कहा गया है और मनको भी अर्णु ही कहा गया

\* प्रकाशानन्द सरस्वतीके वचन—

जेइ ग्रन्थकर्ता चाहे स्वमत स्थापिते । शास्त्रेर सहज अर्थं नहे ताहा हइते ॥  
 मीमांसक कहे ईश्वर हृष कर्मर अङ्ग । सांख्य कहे जगतेर प्रकृति कारण ॥  
 न्याय कहे परमाणु हइते विश्व हृष । मायावादी निर्विशेष ब्रह्म हेतु हृष ॥  
 परम कारण ईश्वरे केह नाहि माने । स्व-स्व मत स्थापे परमतेर खण्डने ॥  
 ताते छय दर्शन हृते तत्त्व नाहि जानि । महाजन जेइ कहे, सेइ सत्य मानि ॥  
 श्रीकृष्णचैतन्यवार्णी अमृतेर धार । तिहों जे कहये वस्तु सेइ तत्त्वसार ॥

है। उसमें जीवको लिङ्गस्वरूप बतलाया है। किसी-किसी नैयायिकने मुक्तिको स्वीकार किया है। वह मुक्ति भी ब्रह्मसायुज्य मुक्तिकी तरह जीव का सर्वनाश-विशेष है। श्रीशंकराचार्यजीने जो वेदान्तका भाष्य लिखा है, उसमें भी जीवको अनिश्चय बरण किया है। मूल वेदान्त शास्त्र ही यथाथ मंगलकारी शास्त्र है। इस शास्त्रमें जो सभी भक्तिपोषक भाष्य हैं, उनमें जीवका शुद्धस्वरूप विचारित हुआ है। पूर्वोक्त मत-समूह ही जीवके स्वरूपविरोधी मत हैं। वे सभी मत परित्याज्य हैं।

स्वधर्म स्वरूप विरोधानुभाव प्राप्त करना नितान्त आवश्यक है। भगवदानुगत्य, भगवन्निष्ठा, भगवद् रुचि, भगवदासक्ति, भगवद् रति, भगवदनुराग, भगवद् प्रीति, भगवद् भाव आदि शब्दोंके द्वारा जिस भगवद् भक्तिको लक्ष्य किया गया है, वर्ती भक्ति ही जीवका स्वधर्म है। विकर्म बुद्धि, कर्म बुद्धि, अयुक्त वैराग्य बुद्धि और अशुद्धज्ञान—वे सभी ही जीवके स्वरूप विरोधो भाव हैं। पहले इन सभी विषयोंकी आलोचना की गई है; अतएव उसके अनुसार स्वधर्म विरोधानुभाव प्राप्त करना ही श्रेयस्कर है।

फलस्वरूप विरोधानुभाव भी प्राप्त करना नितान्त आवश्यक है, भक्तिका क्या फल है, यह पहले ही कहा जा चुका है। मुक्ति अर्थात् स्वर्गादि भोग,

मुक्ति अर्थात् सालोक्य, सार्षि, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य—ये पाँच प्रकारकी जड़मुक्तियाँ किसी किसी मतानुसार भक्तिके फलमें परिणयित हुई हैं। भक्तिशास्त्रमें भक्तिके फलहपी भुक्तिको भक्ति नहीं बतलाया है। पूर्वकथित भक्तिके लक्षणानुसार भक्तिमें भोगेच्छा कदापि नहीं रहती। भुक्ति कर्मका फल है, भक्तिका नहीं। भक्तिको छोड़कर और दूसरे प्रकारके साधनोंसे कोई फल नहीं होता; अतएव कर्म यदि अपने अभीष्ट फल प्राप्त करनेके लिए भक्तिका वरण करें, तो भक्ति उस फलको देकर स्थानान्तरित हो जाती है। भुक्तिको कर्मफल कहना ही वैज्ञानिक मीमांसा है। अविद्या ही जीवका बन्धन है; शुद्धज्ञानके उदय होने पर अविद्या दूर होती है और जीव स्व-स्वरूपको प्राप्त करता है। अतएव मुक्ति ज्ञानका ही फल है, भक्तिका नहीं। सालोक्य, सार्षि, सामीप्य और सारूप्य—ये सेवोपयोगी अवस्था विशेष हैं। \*

किन्तु एकान्त भगवदभक्त लोग भगवानकी सेवाको छोड़कर और कुछ भी नहीं चाहते। सेवा प्राप्त करनेके लिए आवान्तर अवस्था रूपसे सभी मुक्तियाँ शुद्धज्ञान द्वारा मिलती हैं। अतएव वे कदापि भक्तिफल नहीं हैं। मुक्ति जीवका जड़मोन्ननरूप अवस्था विशेष है। भक्ति उसके पहले और पीछे दोनों ही समय रहती है। मुक्तिके पश्चात् भी जो भक्ति रहती है, उसका क्या फल है? उसका जो फल है, वही

\* अत्र त्यज्यतयं वोक्ता मुक्तिः पञ्चविधापि चेत् । सालोक्यादिस्तथाप्यत्र भक्तिचा नाति विरुद्धते ॥

सुखै द्वयर्योत्तरा सेव्यं प्रेमसेवोत्तारस्यपि । सालोक्यादिद्विधात्तव्र नाद्या सेवाजुषां मता ॥

किन्तु प्रेमकमात्रुं भुज एकान्तिनोहरी । नैवाज्ञीकुर्वते जातु मुक्ति पञ्चविधामपि ॥

भक्तिका फल है । मुक्तिको भक्तिके फलके रूपमें वैज्ञानिक लोग ( भक्त लोग ) स्वीकार नहीं करते । भक्ति ही भक्तिका फल है । यदि हृदयमें मुक्ति-मुक्ति बांधा हो, तो वहाँ पर शुद्धभक्तिका उदय नहीं होता । अतएव भुक्ति और मुक्ति बांधा ही भक्तिके स्वरूपविद्वांशी हैं ।

पाँच प्रकारके ज्ञानोंकी विवेचना की गई है; उनमें इन्द्रियार्थ ज्ञान, नैतिक ज्ञान, ईश्वरज्ञान—ये तीनों ही गौण हैं, अर्थात् शरीर, मन, बुद्धि आत्मा और समाज सम्बन्धीय हैं । अतएव ये जीवों के लिए प्रसम्पूर्ण और अकिञ्चित्कर हैं । ब्रह्मज्ञान ईश्वरज्ञानका एक उपशाखा मात्र है । वह साधनके लिए कहीं-कहीं थोड़ी सी सहायता करता है, किन्तु प्रायः ही अनुपकारी है । ये सभी ज्ञान होने पर भी हेय हैं । शुद्ध ज्ञान ही एकमात्र उपादेय ज्ञान है क्योंकि वह भक्तिका अनन्य सहचर है । भावभक्तों का भगवत् गुणालयानमें जो आसक्ति होती है, शुद्ध ज्ञान ही उस आसक्तिका एकमात्र विषय है । \*

भगवल्लीलाज्ञान न होनेसे उनका गुणालयान और तत् श्वरण कीर्तनादि संभव नहीं होते । भगवान् मध्यमाकारमें भी अपरिमेय हैं—इस गुण के आलयान स्वरूप यशोदा द्वारा भगवान् पहले बाँधे नहीं जा सके, पश्चात् अपि मेय होने पर भी भक्तिके निकट अपनी थुद्रता स्वीकार करते हैं—इस तत्त्वके अनुसार उन्हें अनायास ही बाँध लिया ।

ये सभी भगवल्लीला कथाएँ केवल शुद्धज्ञानोदित तत्त्व समूह हैं । अतएव भावभक्ति और शुद्धज्ञानके ऐस्य विचारसे सभी अशुद्धज्ञानोंको ज्ञान कहकर भक्तिशास्त्रोंमें ज्ञानकी निन्दा सुनी जाती है । शुद्धज्ञानको ज्ञानकाण्ड नहीं कहा जाता । ज्ञानकाण्ड केवल पूर्वोत्त दूसरे चार प्रकारके ज्ञानोंको कहा गया है । वे सभी भक्तोंके लिए परित्याज्य हैं ।

इसमें और एक सूक्ष्म विचार है । ज्ञानके तीन विभाग हैं—जिज्ञासा, संग्रह, और आस्वादन । भावभक्तों द्वारा जिज्ञासा और संग्रह पहले ही साधन भक्तजीवनमें श्रीमद्भगवत्के अर्थ आस्वादनद्वारा पूर्ण हो चुके हैं । भावभक्तके जीवनमें ज्ञानका केवल आस्वादन अंशमात्र रह जाता है । यह आस्वादन अंश मुक्तिको प्राप्त करनेके पश्चात् भी नित्यधारमें उज्ज्वल रूपसे वर्तमान है बल्कि जड़ बढ़ावस्थामें वह संकुचित रहता है । मुक्त जीवोंको वह वैकुण्ठत्व प्राप्त कराता है । जिस पीठ या स्थानमें भगवद् आस्वादनरूप ज्ञानांश विगत कुण्ठ ( बाधारहित ) होकर वर्तमान है, उसी पीठ या स्थानको बुद्धिमान् व्यक्ति वैकुण्ठ कहते हैं । शुद्धज्ञानका आस्वादन या परेशानुभव, हिरक्ति अर्थात् भक्तिके अनुपयोगी वस्तुओंमें उदासीनता और भक्ति अर्थात् भगवदराग—ये सभी युगपत् भक्त हृदयमें वास करते हैं । ये सभी एक ही वस्तु हैं ।

\* भगवद्भक्तिहीनस्य जाति: शास्त्रं जपस्तपः । अप्रागस्यं देहस्य मण्डनं लोकरञ्जनम् ॥

शुचिः सदभक्तिदीपाभिर्गद्युर्ज्ञतिं कलमधः । श्वपाकोऽपि बुधः इताध्यो न वेदाङ्गो हिनास्तिकः ॥

तस्माद् यत्नेन शास्त्राणि परिगृह्य विमत्सरः । तत्कलं ह्युन्मःस्त्रोऽलोकं भजेदेव दृढ़ं बुधः ॥

( नारदपुराण, हरिभक्तिमुद्रोदयमें )

जिस स्थानमें भक्तिको वस्तुके रूपमें ग्रहण किया गया है, वहाँ शुद्धज्ञान अर्थात् भगवदनुभव और वैराग्य--ये दोनों ही उस भक्तिके परिचारक ( सेवक ) के रूपमें कार्य करते हैं । भाव-भक्तिके विचारसे शुद्धज्ञान और युक्तवैराग्य स्वतन्त्र विषय नहीं हैं । वे भावके साथ-साथ फलस्वरूपसे उदित

होकर भक्तिकी सेवा करते हैं। × जिस स्थानमें  
उनका अभाव हो, वहाँ जानना चाहिए कि भाव  
का उदय ही नहीं हुआ है; तथापि जो भावलक्षण  
जैसे देखा जाता है, वह केवल भावाभास या कपट  
रतिमात्र है। चतुर्थ धारामें उसका विचार किया  
जायगा।

## भागवतका स्वरूप

‘निगमकल्पतरोगं लितं फलं  
शुक्रमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।’  
— ( श्रीमद्भाग १११३ )

उपरोक्त फ्लोकमें भागवतका स्वरूप निर्दिष्ट है। यह वेदरूप कल्पवृक्षका फल है। कैसा फल है— परिपक्व। वृक्षकी परिगति फ्लोत्पत्ति है। फ्लो-त्पादनके लिए ही बीज और वृक्षकी सार्थकता है।

वैदार्थकी चरम परिणामि श्रोमद्भागवतके आविभवितमें ही है। भगवदीय-तत्त्व और रस-सिद्धान्त प्रकरणकी ही वैदार्थकी चरम सार्थकता है। वृक्ष और फलके दृष्टान्त द्वारा अति गंभीर

सत्यकी चेष्टाको अन्तर्निहित किया है। वेदका सार प्रणाव है (१)। प्रणावकी मूर्त्ति गायत्री है (२)। व्रह्म-गायत्री फलरूपेण भागवतके प्रत्येक अक्षरमें विद्यमान है।

‘जन्माद्यस्य यतः’—यह समग्र ग्रन्थमें दीज-  
स्वरूप है। गायत्रीमें ‘धीमहि’ पद है, जो इस इलोक  
( श्रीमद्भागवतके प्रथम इलोक ) में भी है। गायत्री  
का ‘प्रचोदयात्’ ही ‘जन्माद्यस्य’ इलोकमें ‘तेने’ है।  
प्रचोदयात् का अर्थ है—‘प्रेरित करे’ और ‘तेने’ का  
अर्थ है—‘विस्तार किया’। दोनोंका तात्पर्य या  
लक्ष्य एक ही है। गायत्रीके ‘वरेष्यं भर्गः—इस

× अमेवयाय प्रकृतेगुणाना जानेनवैराग्यविजीप्तिवेन !

योगेन मत्यपितृया च भक्तया मां प्रत्यगान्मानशिहावस्थं ॥ ( भा. ३।५४।२६ )

१—‘वैद्य व्रग्नात् पत्राण्’—भा० ११।१।१

‘प्रगत्वः सर्वं ब्रह्मेष’—गीता १७

२—‘अनेन गायत्र्योऽसि दधितः’। (थीर्थरी दीपा ११।?)

इलोकमें 'सत्यं परम्' है। गायत्रीके 'सवितुदेवस्य' का तात्पर्य इस इलोकके 'जन्माद्यस्य यतः' पदमें निहित है। पुनः ब्रह्मसूत्रका सूत्र है—जन्माद्यस्य यतः। श्रीमद्भागवतका उक्त प्रथम इलोक इसीसे प्रारम्भ हुआ है—'जन्माद्यस्ययतः'।

अतः श्रीमद्भागवत गायत्री रूप है—यह उसके प्रथम इलोकसे सुस्पष्ट है। मत्स्यपुराणोक्त प्रमाण द्वारा इसके उल्लिखित स्वरूपकी पुष्टि होती है—

यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्णते धर्मविस्तरः ।

बृत्रासुर कथोपेतं तद्भागवतमिष्यते ॥

—( मत्स्यपुराण ५३।२० )

ग्रन्थ अग्निपुराणमें भी—

ग्रन्थोद्दादश साहस्रो द्वादशकं ध समितः ।  
गायत्र्या च समारम्भस्तद्वै भागवतं विदु ॥

अग्निपुराण २७।२।६-७

श्रीचंतन्य महाप्रभुजीने भी स्पष्ट कहा है—

गायत्रीर अर्थ एई यन्थ आरंभन ।

'सत्यं' परं सम्बन्ध, 'धीर्महि--साधने प्रयोजन ॥

( श्रीचंतन्यचरितामृत ८५।४० )

चतुःइलोकी भागवत (श्रीमद्भा० २।१।३०-३४)  
में ज्ञान, विज्ञान, रहस्य और तदञ्जका सूत्ररूपेणा

वर्णन है। शास्त्रका अर्थ जाननेका नाम ज्ञान है। तत्त्व-अनुभूतिका नाम विज्ञान है। प्रेमाभक्तिका नाम रहस्य है तथा साधन भक्ति ही तदञ्ज है। भागवतके अनुबन्ध चतुष्ठोमें भी इन्हें गिना जाता है।

जैसे प्रणवका अर्थ गायत्रीसे जाना जाता है, वैसे ही गायत्रीका ज्ञान भागवत चतुःइलोकीसे होता है। प्रारम्भमें यही चतुःइलोकी ब्रह्माजीको श्रीनारायणसे प्राप्त हुई। तदनतर ब्रह्माजीने इसे देवर्षि नारदको प्रदान किया और नारदजीने व्यासको प्रदान किया।

श्रीचंतन्य-चरितामृतमें और भी स्पष्ट रूपसे गायत्रीको प्रणवका अर्थ तथा चतुःइलोकीको गायत्री का अर्थ कहा गया है—

प्रणवेर जेई अर्थ, गायत्रीते सेइ हय ।

सेई अर्थ चतुःइलोकीते विवरिया कय ॥

—( श्रीचंतन्यचरितामृत म० २५।६२ )

अतः गायत्री एवं चतुःइलोकीके प्रतिपाद्य अभिन्न हैं। वर्तमान श्रीमद्भागवत चतुःइलोकीकी परिणामिति है। अतः श्रीमद्भागवतको वेदरूप कल्पवृक्षका परिपवव फल कहना सर्वथा उचित ही है।

—विद्यावाचस्पति श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी  
एम. ए. पी. एच. डा.

# श्रीश्रीभक्तिविनोद-सङ्गस्मृति

[ पूज्यपाद परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डपादाग्रणी श्रीमद्भक्ति प्रदीप तीर्थ महाराजजी ठाकुर श्रील भक्तिविनोदके शिष्य थे । इन्होंने जगद्गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरके निकट त्रिदण्ड संन्यास ग्रहण किया । ये अतीव नामपरायण एवं श्रीमद्भागवतके रसिक बंधुणव थे । श्रील भक्ति-सिद्धान्त सरस्वती ठाकुरने इन्हें पादचात्य देशोंमें श्रीचंतन्यमहाप्रभुद्वारा आचरित और प्रचारित भागवतथर्म - प्रेमधर्मका प्रचार करनेके लिए भेजा था । ये उच्च बोटिके परा-विद्यानुरागी एवं लेखनी के धनी थे । इन्होंने अङ्ग्रेजी और बंगला आदि विभिन्न भाषाओंमें अनेक ग्रन्थ लिखे हैं । प्रस्तुत प्रबन्ध मासिक 'गीड़ीय' में प्रकाशित एक बंगला प्रबन्धका अनुवाद है । पाठकोंके कल्याण लिये इसे दिया जा रहा है । प्रबन्ध प्रेरणाप्रद है—संपादक]

बहुत दिनोंकी बात है । सन् १९१० के मार्चके महीनेमें मुझे श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकी प्रथम कृपा-प्राप्तिका सौभाग्य मिला था । उसके बादसे प्रत्येक वर्ष गरमो और दुर्गा-पूजाकी छुट्टियोंमें श्रीगुरुदेवके दर्शनोंके लिये मेरा हृदय व्याकुल हो पड़ता । मैं मन्त्र-मुख्यको भाँति अपने-ग्राप खीचता हुआ उनके चरणोंमें उपस्थित हो ही जाता । श्रीगुरुदेव मुझपर सदा-सर्वदा कृपा करते । परन्तु उनकी उस कृपाको ग्रहण करनेमें अपनेको अयोग्य देखकर मेरा हृदय दुःखमें भर जाता था । उन्होंने

समय-समय पर मुझको जो सुन्दर उपदेश दिये, उनमेंसे कुछ संस्मरण शुद्धरूपसे भक्तिमार्ग पर अग्रसर होनेकी इच्छा रखनेवालोंके मार्गदर्शनके लए यहाँ दिये जा रहे हैं ।

(१) श्रीमद्भागवत - ग्रन्थ—उनका जीवन-सर्वस्व था । दूसरे शब्दोंमें उनका जीवन ही श्रीमद्भागवतमय था । जभी कोई व्यक्ति उनसे कोई भी प्रश्न करता, वे श्रीमद्भागवतसे प्रमाण उद्भूत कर उत्तर देते थे । उनके आचरणमें, उनके भाषणमें, ग्रन्थोंमें, निबन्धोंमें उनकी पदावलियोंमें सर्वत्र ही श्रीमद्भागवतके ही प्रमाण और भाव ओतःप्रोत रहते थे ।

(२) ठाकुर श्रील भक्तिविनोदजी हमलोगोंको सब समय सत्संगमें रहकर जड़-प्रभिमान त्याग करके निरन्तर हरिकीर्तन करनेका उपदेश करते थे । उनका कहना था कि अविद्याग्रस्त जीवको दिन-रात निरन्तर हरिनाम कीर्तन करना आवश्यक है । अविद्या-नाशके लिए निरन्तर श्रीहरिनाम कीर्तनके अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं है । वे जोर-जोरसे श्रीनाम-संकीर्तन करनेके पक्षपाती थे । स्वयं उच्चस्वरसे नामकीर्तन करते थे तथा हमलोगोंको भी उच्चस्वरसे नामकीर्तन करनेके लिए कहते थे ।

जब वे हरिनाम कीर्तन करते, तब बीच-बीचमें

श्रीमद्भागवतके इलोकोंका पुलकित होकर प्रेमपूर्वक उच्चारण करते हुए उनका रसास्वादन करते जाते । वे उन इलोकोंकी भावपूर्ण विशद व्याख्या करते हुए स्वयं रसास्वादन करते तथा हमलोगोंको भी उन इलोकोंका तात्पर्य बतलाया करते । मैं इलोकोंको कंठस्थ करके उनके उपदेशानुसार हरिनाम कीर्तन करनेका प्रयास करता था ।

(३) एक बार मैंने उनसे पूछा कि भक्तिका मापदण्ड ( Criteria ) क्या है ? इसके उत्तरमें उन्होंने मुझे श्रीमद्भागवतके निम्नलिखित इलोक को कण्ठस्थ कर लेनेके लिए कहा था—

भक्तिः परेशानुभवो विरक्तिरन्यत्र चैष त्रिक  
एककालः ।  
प्रपद्यमानस्य यथाइनतः स्युस्तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायोऽ  
नुधासम् ॥  
— ( श्रीमद्भु. ११।२४२ )

अर्थात्, जैसे भोजन करनेवालेको प्रत्येक ग्रास के साथ ही तुष्टि ( तृप्ति अथवा सुख ), पुष्टि ( जीवनी शक्तिका संचार ), और क्षुधा-निवृत्ति—ये तीनों एक साथ होते जाते हैं, वैसे ही जो मनुष्य भगवान् की शरण लेकर उनका भजन करने लगता है, उसे भजनके प्रत्येक धरणमें भगवानके प्रति प्रेमाभक्ति, अपने प्रेमास्पद प्रभुके स्वरूपका अनुभव और उनके अतिरिक्त अन्य वस्तुओंमें वैराग्य—इन तीनोंकी एक साथ ही प्राप्ति होती जाती है ।

एक बार मैंने उनके श्रीनारण्योंमें जिज्ञासा की—‘श्रीकृष्णक श्रीचरणकमलोंमें शुद्धाभक्ति कैसे

प्राप्त हो सकती है ?’ इसके उत्तरमें उन्होंने श्रीमद्भागवतके निम्नलिखित कतिपय इलोकोंको सुनाया था । वे इलोकसमूह आज भी मेरे स्मृतिपट पर अङ्कित हैं—

भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवे-  
ज्जनस्य तह्यं च्युत सत्समागमः ।  
सत्संगमो यहि तदेव सदगती  
परावरेशे त्वयि जायते रतिः ॥  
( श्रीमद्भा. १०।५१।५३ )

हे अच्युत ! जीव अनादि कालसे जन्म-मृत्युरूप संसारके चक्करमें भटक रहा है । जब उस चक्कर से छुटनेका समय आता है, तब उसे सत्संग प्राप्त होता है । यह निश्चय है कि जिस क्षण सत्संग प्राप्त होता है, उसी क्षण सन्तोंके परम गतिस्वरूप निखिल कार्य-कारणके नियन्ता आपमें जीवकी बुद्धि अत्यन्त दृढ़तासे लग जाती है तथा उसीसे उसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है ।

यत्तूत्तमश्लोकगुणानुवादः  
संगीयतेऽभीक्षणममंगलधनः ।  
तमेव नित्यं श्रुणुयादमीक्षणं  
कृष्णोऽमलां भक्तिमभीप्समानः ॥  
( श्रीमद्भु. १२।३।१५ )

—भगवान् श्रीकृष्णका गुणानुवाद समस्त अमञ्जलोंका नाश करनेवाला है; महाजनगण उसीका निरन्तर गान करते रहते हैं । जो भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें अनन्य प्रेममयी भक्तिकी

लालसा रखता हो, उसे नित्य-निरन्तर भगवान् श्रीकृष्णके अप्राकृत गुणानुवादका ही श्वरण करते रहना चाहिए ।

**भक्तिस्तु भगवद्भक्तसंगेन परिजयते ।**

**सत्संगः प्रार्थयते पुंभिः सुकृतेः पूर्वसञ्चितेः॥**

—(भक्तिरसामृतसिन्धु)

भगवद्भक्तोंके संग-प्रभावसे भक्तिवृत्तिका उन्मेष होता है । पूर्व-पूर्व जन्मोंकी संचित सुकृतिराशिके फलसे ही शुद्धभक्तोंका सङ्ग प्राप्त होता है ।

‘लोगोंको त्रिताप-ज्वाला क्यों द्वानी है ?’—इस प्रश्नके उत्तरमें उन्होंने कहा था—

तावदभयं द्रविणादेह सुहृन्निमित्तं  
शोकः स्पृहा परिभवो विपुलश्च लोभः।  
तावन्ममेत्यसदवयह आतिमूलं  
यावन्न तेऽडिद्रमभयं प्रवृणीत लोकः ॥

—(श्रीमद्. ३१६।६)

अर्थात्, अनात्मन् असत् वस्तुमें (भौतिक शरीर और शरीरसे सम्बन्धित त्वी, पुत्र, कुटुम्ब, घर और अन्यान्य भौतिक पदार्थोंमें) ‘मैं’ और ‘मेरा’ की बुद्धि ही भय और शोकका मूल कारण है । भगवन् ! जब तक पुरुष आपके अभय और अशोकप्रद श्रीचरणारविन्दोंका आश्रय नहीं लेता, तभीतक उसके अर्थ, शरीर, आत्मीय - स्वजन, कुटुम्ब और अन्यान्य बन्धुजन कहीं विनष्ट न हो जाय—इससे भय, उनके विनष्ट होने पर शोक, पुनः उनको प्राप्त करनेके लिए स्पृहा, तदनन्तर

तिरस्कार आदिको प्राप्त होता है; फिर भी उनके लिये विपुल तृष्णा बनी रहती है तथा किसी प्रकार पुनः उनको प्राप्त होने पर “मैं” और ‘मेरा’—ऐसी जडासत्ति विद्यमान रहती है ।

कृष्णकी कृपा कैसे होती है ?—इस प्रश्नके उत्तरमें उन्होंने एक समय मुझे स्वरचित ‘कल्याण कल्पतरु’ के ‘कबे विष्णुजने आमि करिब सम्मान’ — इस पदका उल्लेख करके कहा था—सदा-सर्वदा निष्ठकपट कातर भावसे श्रीहरिष्णु - वैष्णवोंके चरणोंमें कृपाकी प्रार्थना करना चाहिए । साथ ही श्रीनाम-प्रभुमे रो-रोकर अति दीनतापूर्वक कृपाकी प्रार्थना करनी आवश्यक है । जब वे “श्रीकृष्ण विजय” ग्रन्थका पाठ या कीर्तन करते, तब अत्यन्त आवेगमें भरकरके ‘हा कृष्ण, हा कृष्ण’ करते हुए उच्च स्वरसे रोदन करने लगते थे ।

सेवा और कृपामें क्या भेद है ?—इस प्रश्नके उत्तरमें वे श्रीमद्भागवतके इन श्लोकोंको सुनाकर भावपूर्ण व्याख्या करते हुए उपदेश देते थे—

शृण्वतां स्वकथां कृष्णः पृष्ठस्त्रवणकोत्तनः ।  
हृद्यन्तःस्थो हृचभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम् ॥  
नष्टप्रायेष्वभद्रेषु नित्यं भागवत सेवया ।  
भगवत्युत्तमश्लोके भक्तिर्भवति नेत्रिकी ॥

(श्रीमद्. ११२।१७-१८)

—भगवान् श्रीकृष्णके नाम और लीलाकथाओं का श्वरण और कीर्तन दोनों पवित्र करनेवाले हैं । वे अपनी अप्राकृत लीला-कथाओं अथवा नाम-गुण आदि सुननेवालोंके हृदयमें अन्तर्यामी चेत्यगुरुके

रूपमें स्थित होकर उनकी पाप वासनाओंको सर्वया नष्ट कर देते हैं, क्योंकि वे मात्रोंके नित्य सुहृद हैं।

जब श्रीमद्भागवत अथवा भगवद्भक्तोंके सेवनसे अशुभ वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं, तब पुरुषोत्तम श्रीकृष्णके प्रति अचला और विक्षेप-रहिता भक्ति—प्रेमकी प्राप्ति होती है।

(५) श्रीलभक्ति विनोद ठाकुरजी Materialism (भौतिकवाद) को 'माटियां-ज्ञान' और Transcendentalism को 'त्रिगुणातीत' कहते थे। श्रीकृष्णके प्रति अत्यासक्तिका अभाव रहनेपर जीव Materialistic (विषयात्तक) हो पड़ता है तथा श्रीकृष्णके प्रति अतिशय प्रेम जाग्रत होनेपर वह कृष्ण-प्रेमिक कहलाता है। अतएव आसक्ति कोई बुरी चोज नहीं है। उसके सदृश्यवहार और दुर्धर्षवहारके ऊपर ही भला या बुरा निभर करता है। यदि आसक्ति चिदवस्तु—कृष्णके प्रति हो जाय तो वह निःश्वेयस भगवत्-प्रेमका रूप धारण करती है; अन्यथा नश्वर जड़ विषयोंमें आसक्तिका प्रयोग करनेसे वह अपञ्जलप्रद 'काम' कहलाने लगती है।

(६) शालभक्तिविनोद ठाकुर कहते थे कि जड़ जगतमें बद्धजीवोंकी उपासनामें उपास्यवस्तु दृश्य है तथा उपासक द्रष्टा अर्थात् देखनेवाला है। परन्तु मुक्तजीवोंकी उपासना या भजनमें उपास्य—द्रष्टा और उपासक—दृश्य होता है। कृष्ण—शक्तिमान पुरुष हैं और जीव प्रकृति हैं, जो कृष्ण-भोग्या हैं।

(७) श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर हमें प्रायः यह उपदेश देते कि—“ To give all is to get all”

श्रीकृष्णके चरणारवित्वोंमें सम्पूरणरूपसे आत्म-समर्पण करनेसे कृष्ण द्वीपी दीक्षागुरु, विकाशगुरु और चत्यगुरुके रूपमें जीवोंके हृदयमें आविर्भूत होते हैं। केन्द्र-विन्दुका निर्णय हो जाने पर वृत्त स्थिर हो जाता है, परिधिसे कोई रेखा खींचनेसे ही केन्द्र-विन्दुका पता नहीं चल सकता। केन्द्रविन्दुका पता लग जानेपर केन्द्रविन्दुसे परिधि तक जितनो भी रेखाएँ खींची जायेंगी, वे सभी = मान होंगीं। उसी प्रकार कृष्ण केन्द्रित होनेपर कृष्ण द्वारा दिये गये नेत्रोंसे जगतके सभी पदार्थ कृष्ण-सेवाके उपकरण के रूपके दीख पड़ते हैं। उस समय कृष्ण ही सबके द्रष्टा और भोक्ता प्रतीत होते हैं। ऐसी अनुभूतिसे सम्पूर्ण समदर्जी जीव ही सम्पूर्ण भूतसमुदायके अन्दर और बाहर श्रीकृष्णको स्थित देखता है और वही यथार्थ 'पण्डित' कहलाता है। इस प्रसङ्गमें ठाकुर भक्ति विनोद जी श्रीमद्भागवतके इस इलोकका गान करते थे—

नैवोपयन्त्यपचिति कवयस्तवेश

ब्रह्मायुषापि कृतमृढमुदः समरन्तः ।

योऽन्तर्बहिस्तनुभृतामशुभिधुन्व-

ब्राचार्यचेत्यवपुषा स्वर्गति दृष्टनक्त ॥

— (श्रीमद् ११२६।६)

—भगवन् ! आप समस्त प्राणियोंके अन्तः-करणमें अन्तर्यामी रूपसे और बाहर गुरुदेवके रूपके स्थित होकर उनके सारे पाप-ताप—पाप-वासनाओं को मिटा देते हैं। बड़े-बड़े ब्रह्माज पुरुष ब्रह्माजीके समान लम्बी आयु पाकर भी आपके उपकारोंका

बदला नहीं चुका सकते । इसीसे वे आपके उपकारों को स्मरण करके क्षण-क्षण अधिकाधिक आनन्द का अनुभव करते रहते हैं ।

(८) पंकज ( कमल ) पंकसे उत्पन्न होता है; परन्तु पंकसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं होता । उसी प्रकार भगवद्भजन भिस्टी भी कुलमें वयों न पैदा हों, उस कुलके साथ उनका किसी भी प्रकारका सम्बन्ध नहीं होता । श्रीप्रल्लाद महान्‌ज थसुरकुलमें आविभूत होने पर भी जगदगुरु और महाभागवत हैं, तथा श्रीहरिदास ठाकुर मुसलमान कुलमें आने पर भी द्विरिनामके आचार्य हैं ।

**भक्ति पुनाति सन्निष्ठा स्वपाकात्पि सम्भवात् ।**

— ( भागवत ११।१४।२१ )

अर्थात् ऐकान्तिकी निष्ठायुक्त भक्ति चाण्डालोंको भी पवित्र करती है ।

(९) मथुराका टिकट लेकर आगरेमें उतर कर ताजमहलको देखकर मुख्य हो जाना तथा मुक्त मथुरा जाना है—गह भूल जाना कदापि बुद्धिमानों का कार्य नहीं है । उसी प्रकार भगवद्भजन करनेके लिए धन-जन सब कुछ छोड़कर साधुतेथे ग्रहणकर परमानन्दमय व्रजधाम या गोड्धामको भूलकर निरानन्दमय मर्यादामकी चमक-दमक देखकर मुख्य हो जाना भी बुद्धिमत्ताका एकिच्छय नहीं है ।

इसलिये ठाकुर भक्तिविनोदजी श्रोद्रुमके स्वानन्दमुखद-कुञ्जमें रहकर निरन्तर श्रीराधामाधवका भजन करते थे ।

(१०) ठाकुर श्रीलभक्ति विनोदजी हमलोगोंको

श्रीहरप गोस्वामी द्वारा रचित 'उपदेशामृत' का सदा-सर्वदा अनुशीलन करनेकी प्रेरणा दिया करते थे, भक्तिके प्रतिकूल प्रजल्प और नियमाग्रके प्रति, भक्तिके अनुकूल छ. गुणों और छ. सत्सङ्घोंके प्रति तथा नाम भजनके लिए 'तन्नाम चरितादि'— इलोकके प्रति विशेषरूपसे लक्ष्य रखनेके लिए जोर देते थे । श्रीगुरुपदिष्ट श्रीनाम भजन-परायण होकर श्रप्राकृत देहसे अप्राकृत गुरुरूपा सखीके आनुगत्यमें पाल्यदासीके रूपमें गोदर्घनके सन्निकटस्थ श्रीराधा-कुण्डके तट पर वास करते हुए श्रीराधागोनिन्दकी विरहभावमयी ( विप्रलंभरसकी ) सेवा ही गौर-भजनकी पराकाष्ठा है—इसका श्रीलठाकुरने हमें अनेक बार उपदेश किया था ।

(११) श्रीठाकुर भक्तिविनोदजीने 'मनःशिक्षा'के इलोकोंका बैगला पयारोंमें बहुत ही सुन्दर अनुवाद किया है । वे हमें अक्सर उन पयारोंका कीर्तन करनेके लिए करते तथा साथ-ही-साथ गुरु-स्वरूप बैष्णवोंके आनुगत्यमें व्रजबास, दुःसंग अर्थात् ग्राम्य विषय-कथा, कपटता, मुक्तिव्याघ्री, प्रतिष्ठाकी आशा रुपी चाण्डालिनीका संग-स्याय और श्रीरूपके आनुगत्यमें व्रजमें श्रीराधागोविन्दका भजन करनेकी प्रणालीको हमें सुन्दररूपसे समझाया करते थे ।

(१२) वे हम लोगोंको उपदेश करते हुए सर्वदा कहने थे कि— जीवोंके लिए श्रीकृष्णका विच्छेदगत भाव ही स्वाभाविक गौर-भजन है । 'हरे कृष्ण'— इस महामन्त्रका कीर्तन करनेसे आत्म-मञ्जुल, गम-मञ्जुल और श्रीराधागोविन्दके संभोग और विरह रसका भजन साथ-साथ सम्पन्न होता है ।

(१३) ह्लादिनीका सार और सम्बितका सार-दोनोंका सम्मिश्रण ही भक्ति-शक्ति है। कृष्ण या कृष्णभक्त कृपा करके जिस मौभाग्यवान्‌के हृदयमें उस भक्तिशक्तिका संचार करते हैं, वे भक्त हो जाते हैं। श्रीमन्महाप्रभुजी जिनके ऊपर कृपा करते, उनके हृदयमें उसी शक्तिका संचार करके उसके ऊपर वैष्णव धर्म-प्रचारका भार अर्पण करते थे।

(चैतन्यचरितामृत भ. ७६६)

भक्तिदेवी कब और किसके हृदयमें आविभूत होती है? और प्रचारमें किसका अधिकार है?—इस प्रश्नके उत्तरमें श्रील ठाकुर भक्तिविनोदका उपदेश है—वैष्णवकी चरणरज, वैष्णवका चरणामृत और वैष्णवका अधरामृत (उच्छिष्ठ प्रसाद या मुखविग्लित हरिकथा) —ये तीनों ही भवरोगकी अव्यर्थ औषधि और पथ्य हैं। कुपथ्यका सेवन करने पर औषधिका फल नहीं होता। इस प्रसंगमें वे श्रीमद्भागवतके 'निवृत्ततर्णरूपगीय-मानात्' (भा. १०।१४) इस श्लोककी व्याख्या करके समझाते थे।

(१४) गृहस्थाश्रमका क्या तात्पर्य है?—इस प्रश्नके उत्तरमें वे कहते थे—वास्तवमें गृहस्थाश्रम जो वोंके आत्मतत्त्व उन्मेष और शिक्षा ग्रहण करनेके लिए पाठशाला स्वरूप है। शिक्षा समाप्त होनेपर पाठशालाता त्याग कर दिया जा सकता है।

(१५) पाँच प्रकारके बलेश कौन-कौन हैं?—इसका उत्तर—अविद्या, अस्मिता, अभिनिवेश, राग और द्वेष—ये पाँच प्रकारके बलेश हैं। इनमें द्वेष या मत्सरता पाँच प्रकारकी होती है—

(१) ईश्वरमें विश्वास।

(२) ईश्वरको कर्मफलके अधीन मानना।

(३) ईश्वरकी अप्राकृत सविशेषता स्वीकार न करना।

(४) जीवको ईश्वरका नित्याधीन तत्त्व न मानना।

(५) दया घून्यता।

(क्रमशः)

# श्रीश्रीनवद्वीप-थामपरिक्रमा और श्रीश्रीगौर जन्मोत्सव

पिछले वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता एवं नियामक परमहंस स्वामी १००६ श्रीश्रीमदभक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी नियामकतामें श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें २५ फाल्गुन, ६ मार्च सन् १९६८ से लेकर १ चैत्र १५ मार्च तक श्रीश्रीनवद्वीप-थाम-परिक्रमा और श्रीश्रीगौरजन्मोत्सव विराट समारोहके साथ सम्पन्न हुआ है।

यद्यपि बंगालमें सर्वत्र ही राजनीतिक उथल-पुथल एवं अन्न-संकटका अपरिहार्य प्रभाव है, फिर भी जगन्नियन्ता एवं पालयिता श्रीश्रीविश्वभरकी अनुकम्पासे यह महोत्सव सर्व प्रकारसे साफल्य-मणित हुआ है। इम वर्ष उक्त कारणोंसे यात्रियों की संख्या अत्यन्त अल्प होने की संभावना थी, फिर भी भारतके विभिन्न भागोंसे लगभग २००० अद्वालु यात्री इसमें सम्मिलित हुए थे। परमार्थ्य श्रीश्री-आचार्य देवके आनुगत्यमें तदाश्रित त्रिदण्डो-संन्यासियों एवं ब्रह्मचारियोंने बड़े ही सुशृङ्खलता पूर्वक श्रीधामपरिक्रमा एवं श्रीश्रीजन्मोत्सवका संचलन किया है। उनके सरस एवं गम्भीर दार्शनिक प्रवचन पाठ एवं भावपूरण कीर्तन शुद्ध भक्तिरसकी मन्दाकिनी प्रवाहित कर उपस्थित श्रोतृमण्डलीको निम्जित कर उनके अन्दर नव-जीवनका संचार करती थी।

दो-तीन दिन पहलेसे ही यात्रियोंका समागम होना आरम्भ हो गया था। २४ फाल्गुन मंगलवार को श्रीधाम परिक्रमाके अधिवासके दिन श्रीपरिक्रमाका संकल्प ग्रहण किया गया।

कलियुग पावनावतारी श्रीराधाभाव-कान्ति अंगोकारकारी स्वयं भगवान श्रीगौरसुन्दरकी लीला भूमि—श्रीनवद्वीप धासके अन्तर्गत नौ-द्वीप हैं—(१) श्रीगोद्रुम द्वीप, (२) श्रीमध्यद्वीप, (३) श्रीकोलद्वीप, (४) श्रीऋतुद्वीप, (५) श्रीजल्द्वीप, (६) श्रीमोद्रुम द्वीप, (७) श्रीरुद्रद्वीप, (८) श्रीसीमन्त द्वीप और (९) श्रीअन्तद्वीप।

**साधारतः** लोग वर्तमान नवद्वीप शहरको ही श्रीश्रीगौरसुन्दर—श्रीचैतन्य महाप्रभुका जन्म स्थान समझते हैं। परन्तु वर्तमान नवद्वीप, वास्तव में श्रीकोलद्वीपके अन्तर्गत प्राचीन कुलिया नगर है। श्रीचैतन्य महाप्रभुजी संन्यास ग्रहण करनेके पश्चात् यहाँ पर पधार कर भक्तोंके प्रति अपराध करनेवालोंका अपराध क्षमा किया था। यहाँ पर भागवतके प्रसिद्ध पण्डित श्रीदेवानन्दका घर था। श्रीचैतन्य महाप्रभुका जन्म-स्थान गंगाके पूर्व तट पर श्रीअन्तद्वीपके अन्तर्गत श्रीधाम मायापुरमें है। पहले यहाँ पर बहुत बड़ा शहर था, जिसमें लाखों लोग बसते थे। परन्तु भगवती भागीरथीके विभिन्न

दिशाओंमें अपने बहावके कारण उस शहरकी आवादी भागीरथीके पूर्वसे हट कर कमशः पाँच मिनट पर कुलिया नगरमें आ गयी। फिर भी नवद्वीप वासी कुलियामें बसने पर भी अपने स्थान (कुलिया) को नवद्वीप ही पुकारते थे। धीरे-धीरे कुलियाको भूलकर लोग उसे श्रीनवद्वीप ही कहने लगे। आज भी कुलियाको ही लोग नवद्वीप कहते हैं। विभिन्न प्राचीन ऐतिहासिक तथ्यों, मानचित्रों एवं प्राचीन ग्रन्थोंके आधार पर यह निर्विवाद रूपमें प्रमाणित हो चुका है कि श्रीधाम मायापुर ही (गंगाके पूर्वी तटपर स्थित) श्रीचैतन्य महाप्रभुका जन्म-स्थान है।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी परिक्रमा उपरोक्त नौ द्वीपोंकी ही होती है। परिक्रमाके समय विभिन्न शास्त्रोंसे उन-उनद्वीपोंका महत्व तथा वहाँ पर श्रीमन्महाप्रभुकी जो-जो लीलाएँ हुई थीं, उसका वर्णन किया जाता है। इस बार (१) २५ फालगुनको गोद्रुमद्वीप, मध्यद्वीप, (२) २६ फालगुनको कोल-द्वीप, ऋतुद्वीप, (३) २७ फालगुनको जलद्वीप, मोद्रुम द्वीप, (४) २८ फालगुनको रुद्रद्वीप, और (५) २९ फालगुनको अन्तर्द्वीप तथा सीमन्त द्वीप—इस प्रकार पाँच दिनोंमें नौ द्वीपोंकी परिक्रमा हुई है।

प्रतिदिन प्रातःकालमें परिक्रमा आरम्भ होती थी। आगे-आगे श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गकी रत्नपालकी, उसके पश्चात् त्रिदण्डपादगण, तत्पश्चात् संकीर्तन मण्डली और उसके पीछे अपार जन-समूह। 'श्रीगौर-हरिकी जयध्वनि' एवं अगणित कण्ठोंसे निकली

हुई संकीर्तनकी ध्वनि, मृदंगों, करतालों, भाऊरों, शंखों, भेरियों एवं अन्यान्य वाद्योंकी ध्वनिके साथ मिलकर दिग्दिगंतको मूलरित एवं भावविभोर कर रही थी। व्रजका प्रेम कीर्तनके माध्यमसे नवद्वीप भूमियें प्रत्यक्ष रूपसे सर्वत्र ही हष्टिगोचर हो रहा था। कोई-कोई भाव-विभोर होकर 'हा गौर! हा गौर!' कह कर नृत्य करते थे, तो कोई-कोई धामकी पावन रजोंमें लोट-लोट कर अपने आँसुओं से उन्हें सीचते थे। सर्वत्र ही मानों भाव उमड़ रहा था।

तदनन्तर परिक्रमा पार्टी श्रीगौर-लीला स्थलियों का दर्शन कर मध्याह्नमें श्रीदेवानन्द गौड़ीयमठमें लौट कर प्रसाद सेवा करती अथवा दूरके स्थानोंमें वहीं पर प्रमाद सेवा करती। प्रतिदिन नियमित रूपसे सुबह-शाम श्रीराधाविनोद विहारीजीकी शारति संकीर्तन, श्रीभागवत आदि पाठ, प्रवचन आद होता था।

### श्रीश्रीगौरजन्मोत्सव

३० फालगुनको श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुकी आविभाव तिथिके दिन प्रातःकालसे संध्यातक श्रीतन्य-भागवतका पारायण हुआ। सबने उस दिन संध्यातक निजला तथा तत्पश्चात् अनुकल्प ग्रहण कर व्रत धारण किये। शामकी धर्म सभामें विभिन्न वक्ताओंने 'श्रीमन्महाप्रभुके दानका वैशिष्ट तथा 'उनके तत्त्व और उनकी शिक्षाओं' के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश ढाला। दूसरे दिन १ चैत्रको विशेष महोत्सव हुआ, जिसमें सबेरे नौ बजेसे लेकर

१० बजे रातक कई हजार व्यक्तियोंको महाप्रसाद दिया गया।

### बंगालके प्राक्तन मुख्य मंत्रीका आगमन

इस वर्ष परिक्रमाके समय बंगालके प्राक्तन मुख्य-मंत्री श्रीप्रफुलचन्द्र घोष महोदय श्रीधाम नवद्वीप का दर्शन करनेके लिये पधारे थे। समितिके हारा आयोजित श्रीधाम-परिक्रमा एवं समितिद्वारा

श्रीचैतन्य महाप्रभुके आचरित और प्रचारित प्रेम-धर्मके प्रचार कार्योंको देखकर उन्होंने बड़ी सराहना की। अंतमें वे श्रीश्री आचार्यदेवसे देशकी वर्तमान परिस्थितिमें धर्मका सहयोग आदि विषयोंमें कुछ समय तक वार्तालापकर तथा उनका शुभाशिर्वाद ग्रहण कर, श्रीश्रीराधा-विनोदविहारीजीका दर्शन एवं प्रसाद ग्रहण कर कलकत्ते लौट गए।

— स्वसंवाद-दाता

## श्रीभागवत-पत्रिकाके सम्बन्धमें विवरण

- |  |  |
|--|--|
| (१) प्रकाशनका स्थान—श्रीकेशवजी गोड़ीय मठ, मथुरा। | (५) सम्पादकका नाम—त्रिदण्डस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराज।   |
| (२) प्रकाशनकी अवधि—मासिक।                        | राष्ट्रगत-सम्बन्ध—हिन्दू ( गोड़ीय वैष्णव )   |
| (३) मुद्रकका नामक—श्रीहेमेन्द्रकुमार।            | पता—श्रीकेशवजी गोड़ीय मठ।  |
| राष्ट्रगत सम्बन्ध—हिन्दू ( भारतीय )।             | (६) पत्रिकाका स्वत्वाधिकारी—श्रीगोड़ीय वेदान्त समितिके तरफसे उसके प्रतिष्ठाता और नियामक परमहंस स्वामी श्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव महाराज। समिति अनरेजिस्टर्ड। |
| (४) प्रकाशकका नाम—श्रीकुञ्जविहारी ब्रह्मचारी।    |  |
| राष्ट्रगत सम्बन्ध—हिन्दू ( गोड़ीय वैष्णव )।      |  |
| पता—श्रीकेशवजी गोड़ीय मठ, मथुरा।                 |  |

मैं कुञ्जविहारी ब्रह्मचारी, इसके द्वारा घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी वातें मेरी जानकारीमें और विश्वासके अनुसार सत्य हैं।

१५ अप्रैल, १९६८

—कुञ्जविहारी ब्रह्मचारी

छप गया !

छप गया !!

## जैवधर्म

वर्षोंसे पाठक जिस ग्रन्थकी बड़ी उत्कण्ठापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे थे, वह "जैवधर्म" ( हिन्दी संस्करण ) प्रकाशित हो गया है।

यह ग्रन्थ वर्तमान वैष्णव जगतमें विशुद्ध भक्ति-भाषीरथीकी पुनीत धाराको पुनः प्रबल वेगसे प्रवाहित करनेवाले, विभिन्न भाषाओंमें भगवद्भक्ति सम्बन्धी सैकड़ों ग्रन्थोंके रचयिता श्रीचंतन्य महाप्रभु के प्रिय पार्षद सप्तम गोस्वामी श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा बंगला भाषामें लिखित सुप्रसिद्ध ग्रन्थ—'जैवधर्म' का हिन्दी अनुवाद है। अनुवादक हैं—'श्रीभागवत पत्रिका' ( मासिक परमार्थिक पत्र ) के सम्पादक—त्रिदण्डी स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराज ।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके अन्तर्गत अखिल भारतीय गौड़ीय मठोंके संस्थापक आचार्य १०८ श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज द्वारा संपादित होनेसे इस ग्रन्थकी उपादेयता और भी बढ़ गयी है।

इसमें अखिल विश्वके निखिल जीवोंके सार्वत्रिक, सार्वकालिक तथा सार्वजनिक नित्य और सनातन धर्म—जैवधर्म ( जीवका धर्म ) का हृदयग्राही एवं साङ्घोपाङ्घ वर्णन है। इसमें वेद-वेदान्त, श्रीमद्भागवत आदि पुराण, ब्रह्मसूत्र, महाभारत, पञ्चरात्र एवं श्रीगौड़ीय-गोस्वामियोंके 'भक्तिरसामृत-सिन्धु, उज्ज्वलनीलमणि, षट्-सन्दर्भ, श्रीचंतन्यचरितामृत आदि सद्ग्रन्थोंका सार सहज सरल और रुचिकर भाषामें उपन्यास-प्रणालीमें गागरमें सागरकी भाँति भरा हुआ है।

हिन्दी भाषामें श्रीगौड़ीय-वैष्णवधर्म और उसके सिद्धान्तोंका यह सर्वथेष्ठ प्रामाणिक ग्रन्थ है। हिन्दी साहित्यमें अब तक वैष्णव धर्मके, विशेषतः श्रीगौड़ीय वैष्णव धर्मके परमोच्च दार्शनिक सिद्धान्तों एवं सर्वोत्कृष्ट उपासना पद्धतिका बोध करनेवाले ऐसे अपूर्व सुन्दर और सर्वाङ्गपूर्ण ग्रन्थका सर्वथा अभाव था। यह 'जैवधर्म' हिन्दी जगतकी इस अभावको पूर्ति कर दार्शनिक एवं धार्मिक जगतमें, विशेषतः वैष्णव जगतमें युगान्तर उपस्थित करेगा—इसमें कोई सन्देह नहीं है।

अतः पाठकोंसे हमारा विशेष अनुरोध है कि वे इस ग्रन्थरत्नका संप्रह कर अवश्य ही अध्ययन करें।

सोलह पेजी २०×३० आकारके ८०० पृष्ठोंकी सजिलद पुस्तक। उत्तम कागज पर सुन्दर छपाई मूल्य केवल दस रुपये।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ  
पो०—मथुरा ( उ. प्र. )